॥ ओ३म् ॥

आर्यपथिक लेखराम

"परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥"
—भर्तृहरि

•

—लेखक—

स्वामी श्रद्धानन्द

•

—प्रकाशक—

अधिष्ठाता साहित्य प्रकाशन विभाग

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

गुरुदत्त भवन जालन्धर

तृतीयावृत्ति २०००

श्रीमद्दयानन्दाब्द १४०
विक्रमाब्द २०२०

प्रकाशक—

अधिष्ठाता

साहित्य प्रकाशन विभाग

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

गुरुदत्त भवन जालन्धर

●

मूल्य

एक रुपया पच्चीस नये पैसे

●

मुद्रक—

सम्राट् प्रेस,

पहाड़ी [illegible]रज, देहली

आर्यपथिक लेखराम

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ

* ओ३म् *

प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

इस ग्रन्थ का नाम मैं आख्यायिका रख नहीं सकता और न अपने में ग्रन्थ-कर्ता बनने की योग्यता समझता हूँ। आगे के पृष्ठों में पाठकों के लिये भाषा के लालित्य तथा विचारों के पांडित्य को खोजना एक निष्फल परिश्रम होगा। मैं शुष्क-ऐतिहासिक होने का भी अभिमान नहीं कर सकता क्योंकि इस जीवन के साथ मेरा ज्वलन्त सम्बन्ध रह चुका है और जो घटनायें स्मरण करने पर, अब भी जागृत अवस्था में मेरे सामने ज्यों की त्यों खड़ी हो जाती हैं उनका वर्णन करते हुए तीव्र से तीव्र तर्क भी परास्त हो जाता है।

इसलिए इस पुस्तक को एक पवित्र जीवन के चरणों में कृतज्ञता की भेंट-मात्र समझिये।

उपर्युक्त कृतज्ञता का ऋण चुकाने में इतना बिलम्ब हो गया था कि मुझे इस पुस्तक को बहुत ही अल्प समय में समाप्त करना पड़ा। इस कारण न केवल यही कि बहुत से प्रूफ स्वयं नहीं देख सका (जिससे छापे की अशुद्धियाँ रह गईं) प्रत्युत बहुत सी एक ही प्रकार की घटनाओं में से यह निश्चय करने का कार्य भी कठिन हो गया कि किनको स्थान दिया जाय और किनको किसी आने वाले समय के लिये रख छोड़ा जाय। मैं इन विविध त्रुटियों के लिये केवल यही आशा कर सकता हूँ कि धर्मवीर लेखराम के जीवन से जो शिक्षा मिलती है, उसका उज्वल प्रकाश इन त्रुटियों की ओर कोई दृष्टि ही न जाने देगा। यदि इस ग्रन्थ की द्वितीयावृत्ति की आवश्यकता हुई तो इन तथा अन्य त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करूंगा।

अन्त में मैं आर्यपथिक के चचा श्री गण्डाराम जी, उनके पुराने उस्ताद मुंशी तुलसीदास जी, आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के अधिकारी गण तथा अन्यान्य आर्य-भाइयों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने पण्डित लेखराम के जीवन-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार तथा अन्य लेख मेरे हवाले करने में तनिक भी सङ्कोच नहीं कि[illegible]

गुरुकुल वि[illegible]ालय, कांगड़ी
५ मार्गशीर्ष, [illegible]१ वि०

मुन्शीराम जिज्ञासु।

ग्रन्थ लेखक—स्व० स्वामी श्र. न्द सरस्वती

द्वितीय संस्करण की भूमिका
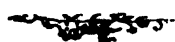
आर्य्यपथिक लेखराम को धर्म पर बलिदान हुए २० वर्ष व्यतीत हो चुके उनका जीवन-वृत्तान्त छपे भी १० वर्ष हो लिये। इस दीर्घकालमें कितने ही आर्य्य-पथिक बने और काल-चक्रमें पड़कर चल बसे, परन्तु जो निरालापन लेखरामके लेखों में था जिस प्रकार धर्म-सेवा में वह मस्त रहते थे और जो प्रभाव वह अपने कट्टर शत्रुओं तक पर डालने में कृतकार्य होते थे, उसका दूसरा एक दृष्टान्त नहीं दिखाई दिया।

यह सच है कि जिन ऐतिहासिक रत्नों को, साहित्य के समुद्रों में गहरा गोता लगा कर पण्डित लेखराम ने निकाला था वह आज कल आर्य्यसमाज सभासदोंको साधारण दिखाई देते हैं, परन्तु जिस समय उनको लेखराम ने प्रकाशित किया वह समय विचित्र था। एक लम्बे पुरुष के कन्धे पर चढ़कर एक बौने के लिये यह कहना आसान है कि मैं उसकी दृष्टि से भी आगे देख सकता हूं। यदि देव पीछे नर मूर्ख को कन्धे से उतार दे तो फिर उसकी नजर कहां तक दौड़ सकती है।

मुझे आशा थी कि जिन पुस्तकों का सांचा आर्यपथिक बना गये थे उनकी पूर्त्ति के लिये कुछ अरबी फारसी के विद्वान् आगे निकलेंगे परन्तु शोक है कि अब तक आर्यपथिक के ग्रन्थों का पूरा हिन्दी अनुवाद भी छप कर प्रकाशित नहीं हुआ। परन्तु अब फिर आशा बंधती है। जो लेख का काम लेखराम ने आरम्भ किया था उसकी पूर्ति के लिये कुछ विद्वान् अवश्य मैदान में आयेंगे।

दिल्ली
५ मार्गशीर्ष सम्वत् १९८१ वि०
(१० नवम्बर १९२४)

श्रद्धानन्द संन्यासी

कुछ शब्द

•

मार्च सन् १८९७ में आर्य पथिक लेखराम एक धर्मान्ध मुसलमान के छुरे से शहीद हुए थे। ऋषि दयानन्द के पश्चात् आर्यसमाज की बलिवेदी पर यह पहिला बलिदान था। जिसने न केवल पं० लेखराम को अमर शहीद बना दिया। प्रत्युत आर्यसमाज में भी नवजीवन का सञ्चार कर दिया। निस्संदेह यह उनके तप, त्याग और बलिदान का पुण्य परिणाम था कि उनके पश्चात् आर्यसमाज के लिये बलिदानों की झड़ी लग गई। पण्डित तुलसीराम, वीर रामचन्द्र, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल आदि अनेक हुतात्मा तो उन की तरह शहादत का जाम पी गये और उनके काल के अन्य अनेक धर्मवीर जीवन-दान देकर जीवन पर्यन्त आर्यसमाज के लिये मरते रहे। फलस्वरूप आर्यसमाज का आकर्षण बढ़ने लगा और एक दुनिया उसकी छत्रछाया में आ गई।

किन्तु मानना चाहिये कि सब के सब दिन एक समान नहीं रहते। काल-चक्र के साथ आर्य समाज की स्थिति भी बदलती गई। और खेद की बात है कि आर्यसमाज के भी वे दिन न रहे जो पहले थे। निश्चय ही हमारे माननीय पाठक हमें इस कटु सत्य के लिये क्षमा करेंगे कि अब न तो हम में पण्डित लेखराम का सा वह अदम्य उत्साह है और न प्रात स्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द जी की सी असीम श्रद्धा। इसी प्रकार वैदिक मुनि पण्डित गुरुदत्त जी की धर्म-परायणता और त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज जी की निष्काम सेवा की बातें आज हमें सपने की सी बाते लगती हैं। इसी कारण आज हमने लगभग ६६ वर्ष के पश्चात् धर्मवीर आर्य पथिक पण्डित लेखराम की अमर कहानी को पुनः अपने आर्यजनों के सम्मुख रखने की आवश्यकता अनुभव की है। क्योंकि हो सकता है कि उनके जीवन दर्पण में हमें अपने वास्तविक रूप के दर्शन हो जायें और हम एक बार पुनः आर्यसमाज के बीते दिनों को वापिस लाने में सफल हो सकें।

प्रस्तुत पु[illegible] की उपादेयता के सम्बन्ध में हम इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहते कि [illegible] 'एक महापुरुष की दूसरे महापुरुष के प्रति श्रद्धाञ्जलि

है । वे दोनों आपस में धर्म भाई थे । एक छोटा और एक बड़ा । इसलिये लिखने वाले ने जो कुछ भी लिखा है वह सब उनका आँखों देखा है और कहीं भी उन्होंने कोरी कल्पना से काम नहीं लिया ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस पुस्तक का पहला संस्करण सन् १९१४ में और दूसरा १९२४ में छपा था । यह तीसरा संस्करण है जो आप के हाथों में है । पहले दो संस्करणों के प्रकाशन का श्रेय मैसर्ज गोविन्दराम हासानन्द को है । तीसरे संस्करण के प्रकाशन के अवसर पर भी हम उनका हार्दिक धन्यवाद किये बिना नहीं रह सकते क्योंकि मूल पुस्तक के प्रथम जन्मदाता वही हैं ।

चूंकि प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन की प्रथम प्रेरणा हमें श्रद्धेय आचार्य भगवान्देव जी से मिली है इसीलिये हम उनके भी अत्यन्त आभारी हैं । अन्त में हम अपने भाई श्री भारतेन्द्रनाथ जी साहित्यालङ्कार का धन्यवाद करते हैं । कि जिन के निरन्तर परिश्रम से इस पुस्तक को यह सुन्दर तथा आकर्षक आकार मिला है ।

हमें पूर्ण आशा है कि आर्यभाई इस पुस्तक को शीघ्र ही हाथों हाथ पहुँचाने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे ।

गुरुदत्त भवन
जालन्धर
२६ अप्रैल ६३

विनीत—
रामचन्द्र जावेद
अधिष्ठाता
साहित्य प्रकाशन विभाग

अभय प्रार्थना

•

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं

द्यावापृथिवी उभे इमे ।

अभयं पश्चादभयं

पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥

अ० १९।१५।५॥

(नः) हम सब के लिये (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (अभयं करति) अभय साधक होवे और (इमे उभे द्यावापृथिवी) ये दोनों द्यावा-पृथिवी (अभयं) अभयदात्री हों । (पश्चात् अभयं) पीछे अभय, आगे से, (पुरस्तात् अभयं) सामने से अभय और (उत्तरात् अधरात् अभयं नः अस्तु) ऊपर से और नीचे से हम सब के लिये अभय होवें ।

•

प्राण-दान दे, वेद ध्वजा को,

धरती पर फहराया।

रक्त-ज्योति से जिसने युग को,

ज्योतित पथ दिखलाया।

धर्मवीर की, गौरव-गाथा,

सब में प्राण प्रसारे।

सभी चलें पावन बलि पथ पर,

वैदिक धर्म प्रचारें।

पथिक धर्मवीर पं० लेखराम

धर्मवीर पं० लेखराम

का

जीवन-वृत्तान्त

वंश

•

आर्य्यसमाज के परिमित चक्र में तो कोई ही ऐसा बेपरवा आलसी होगा जो आर्य्यपथिक के नाम तथा काम से परिचित न हो, किन्तु आर्य्यसमाज से बाहिर भी करोड़ों मनुष्यों ने लेखराम का नाम सुना है। वीर लेखराम के जीवन की अन्तिम घटना यदि ऐसी क्षुब्ध न होती तो सम्भव था कि उनकी अर्थी के साथ ३० सहस्र के स्थान में तीन सहस्र जनसंख्या भी न होती, ऐसी अवस्था में सम्भव है कि आर्य्यसमाज की परिधि से बाहर उसको जानने वाले भी कम होते; किन्तु फिर भी उसके जीवन में ऐसी विचित्र घटनाओं का प्रादुर्भाव हुआ है जिनसे उसका जीवन-वृत्तान्त सर्वसाधारण के लाभार्थ प्रकाशित करने की आवश्यकता होती है।

जन्मभूमि को जननी कहना कुछ अनुचित नहीं क्योंकि जिस प्रकार गर्भ में स्थित सन्तान पर माता के गुण, कर्म तथा स्वभाव के संस्कार पड़ते हैं वैसे ही जन्मभूमि के जल, वायु तथा प्राकृतिक दृश्यों का भी आश्चर्यजनक प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। लेखराम का जन्म एक ऐसे स्थान पर हुआ जहां का जलवायु पुष्टिकारक तथा जहां के बाह्य दृश्य मन को उत्साहित करने वाले थे। पञ्जाब में जेहलम का जिला जानदार घोड़ियां उत्पन्न करने वाले धन्नी प्रान्त की वरली हद्द पर स्थित है, उस में चकवाल की तहसील प्रसिद्ध है। खास चकवाल उपनगर से आठ कोस पूर्व की ओर ऊँची सतह पर सैदपुर (सय्यदपुर) नामी एक ग्राम है। इस ग्राम के तीनों ओर कस अर्थात् बरसाती नदियां बहती हैं। ग्राम की पूर्वी सीमा वाली नदी का नाम काशी है। इस नदी का स्रोत रामहलावां नामी पहाड़ी से आरम्भ होता है, जिस के

विषय में प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि वनवास के समय पाण्डव कुछ काल तक इस स्थान में खेती करके दिन बिताते रहे। रामहलावां पहाड़ी हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ कटाक्षराज के पास ही है; इसी कारण नदी का नाम काशी पड़ा होगा। दूसरी नदी का नाम सुर है जिसे पण्डित लेखराम जी 'सरस्वती' का अपभ्रंश बतलाया करते थे। इस नदी का स्रोत "करङ्गली" नामी पहाड़ी से निकलता है और सय्यदपुर के दो ओर होता हुआ काशी से जा मिलता है। दक्षिण और पूरब के कोने की ओर बराबर एक हरी-भरी गिरिमाला जाती है। जिस का नाम "दरगेश" और "दल जव्वा" है। इस ग्राम की आबादी ३०० घरों से अधिक न थी, किन्तु ग्रामनिवासी प्रायः खाते-पीते खुशहाल थे। सिक्खों के राज्य में इस ग्राम की ऊंचाई पर एक पहाड़ी गढ़ भी था, जिसे सरदार उत्तमसिंह अहलूवालिया ने बनवाया था। उस गढ़ के एक-दो बुर्जों के अब चिन्ह मात्र ही शेष रह गये हैं, बाकी सब कुछ बरसाती नदियों की भेंट हो चुका है।

यद्यपि पण्डित लेखराम का जन्म सय्यदपुर में हुआ तथापि उनका वंश पहले पोठोवार का निवासी था। रावलपिण्डी का जिला पोठोवार का गढ़ है, उसके कहूटा नामी ग्राम में लेखराम के पुरुषा निवास करते थे। कहूटा भी प्राकृतिक दृश्यों से शून्य स्थान नहीं है किन्तु उसका वर्णन इस समय करने की आवश्यकता नहीं। यहाँ इतना लिखना ही पर्याप्त है कि लेखराम के दादा महता नारायणसिंह के पिता पहले-पहल पोठोवार से अपने ससुराल के ग्राम सय्यदपुर में आ बसे थे। उनके दो पुत्र थे जिन में एक नारायणसिंह थे। नारायणसिंह के दो पुत्र उत्पन्न हुए; बड़े का नाम महता तारासिंह और छोटे का नाम महता गण्डाराम, जो पेशावर पुलिस में डिप्टी इन्सपेक्टर थे और अब पेन्शन लेकर रावलपिण्डी में निवास करते हैं। बड़े भ्राता तारासिंह के घर एक पुत्री तथा तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सब से बड़े का नाम लेखराम, दूसरे का तोताराम और तीसरे का बालकराम रखा गया। पुत्री सब से छोटी थी जिस का नाम मायावन्ती रखा गया। लेखराम वर्तमान जाति भेद के विचार से ब्राह्मण थे। इतना लिखना ही काफी है; इससे अधिक आन्दोलन की इस समय,

जब कि वैदिक वर्णव्यवस्था के पुनर्जीवित करने का विचार हो रहा है कुछ भी आवश्यकता नहीं, फिर भी इस विषय का विशेष वृत्त मनोरञ्जक होगा।

लेखराम के प्रपितामह का नाम "प्रधान" था। यह शाण्डिल्य गोत्रज सारस्वत ब्राह्मण कुल में से एक साधारण पुरुष थे। इनके विषय में कुछ विशेष हाल मालूम नहीं हुए परन्तु आर्य्यपथिक के दादा नारायणसिंह के जीवन पर एक दृष्टि अवश्य डालने की आवश्यकता है, क्योंकि लेखराम के जीवन में बहुत सी घटनाएँ ऐसी उपस्थित हुई हैं जिन का गुह्य रहस्य पैत्रिक संस्कारों के ज्ञान के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता। नारायण के साथ सिंह का योग ही सिद्ध करता है कि परशुराम की तरह यह भी हर समय कहने को तय्यार रहते थे कि—"केवल द्विज कर जानेस मोहीं। मैं जस विप्र सुनावहुँ तोहीं।" हम ऊपर लिख चुके हैं कि सय्यदपुर में सरदार उत्तमसिंह ने सब से पहले गढ़ बनाया था। उनके पश्चात् यहां के हाकिम सरदार कान्हसिंह मजीठिया हुए, जिनके यहाँ नारायणसिंह ने घुड़चढ़ों (सवारों) में नौकरी कर ली। नारायणसिंह बड़े दृढ़ पुरुष थे। उनका शरीर बलिष्ठ तथा हाथ पैर खुले थे। उनकी बहादुरी के कारण सरदार कान्हसिंह इन्हें बहुत माननीय समझते थे और भोजन प्रायः अपने साथ ही कराया करते थे। पेशावर में एक बार सरदार कान्हसिंह के साथ पठानों के सामने युद्ध में खड़े हुए थे, वहाँ इनको बड़ा प्रबल घाव लगा। बन्दूक की गोली मुँह में लगकर दाहिने कान के पास से होती हुई गर्दन में से बाहर निकल गई, किन्तु बहादुर नारायणसिंह ने मुख पर मलिनता तक न आने दी। जब नीरोग हुए तो सरदार साहब ने सोने के कड़ों की जोडी देकर उनका मान किया। इसके पश्चात् भी कई लड़ाइयों में हाथ दिखा कर इन्होंने सिक्खों की नौकरी छोड़ दी। इनके जीवन की एक और विचित्र घटना यहाँ वर्णन के योग्य है कि जब ब्रिटिश राज्य शासन के स्थापन होने पर प्रजा से हथियार ले लिये गये तो नारायणसिंह ने अपने हाथ से हथियार रखने को अपमान समझा और "पुंच्छ" के राज्य में जाकर अपने हथियारों को स्वयं बेच दिया। हम आगे चलकर लेखराम के जीवन में अपने पितामह के दृढ़ संकल्पों का प्रभाव देखेंगे। अपने बड़े पुत्र तारासिंह के विवाह के पश्चात्, जो संवत् १९१२ में हुआ, नारायणसिंह

काश्मीर के सरदार हाड़ासिंह जी के यहां कोठारी नियत होकर चले गये और वहां से लौटकर उनका देहान्त संवत् १६२५ में सय्यदपुर ग्राम के अन्दर हुआ।

नारायणसिंह के छोटे भाई श्यामसिंह थे। यह बाल ब्रह्मचारी ही रहे और सिक्खों के राज्य की समाप्ति पर साधु होकर विचरते रहे। इनका देहान्त संवत् १६२८ विक्रमी में हुआ; तब लेखराम कुमारावस्था से आगे पग धरने लगे थे और यदि हम यह अनुमान करें, कि लेखराम के आगामी धार्मिक जीवन पर इनके दृष्टान्त का कुछ प्रभाव पड़ा तो कुछ अनुचित न होगा।

जन्म तथा बाल्यावस्था

लेखराम का जन्म ८ चैत्र सं० १९१५ वि० को शुक्र के दिन सय्यदपुर ग्राम में हुआ। छः वर्ष की आयु में ही इसको देहाती मदरसे में उर्दू-फारसी पढ़ने के लिये भेजा गया। पंजाब में चिरकाल से फ़ारसी का राज्य हो चुका था। खालसा पन्थ के राज-शासन से पहिले लाहौर मुसलमान राजप्रतिनिधियों का गढ़ था। कई समयों में दिल्ली के बादशाह स्वयं लाहौर में निवास किया करते थे। न्यायालयों का सब काम हिन्दू राजकर्मचारी भी फ़ारसी में ही किया करते थे। देवनागरी अक्षरों का किञ्चिन्मात्र भी प्रचार न था, और होता कैसे जब सरकारी नौकरी से बढ़ कर कोई मान का स्थान ही न समझा जाता था और सरकारी नौकरी में उन्नति प्राप्त करने के लिये आवश्यक था कि फारसी भाषा में उत्तम योग्यता सम्पादन की जावे। उन दिनों ५) मासिक पाने वाला घाट का मुर्हारिर भी अपने आप को "अहले कलम" कह कर उपजकी लेता था और लाखोंपति साहूकारों तथा सैकड़ों की मालगुजारी भुगताने वाले जमींदारों को अपनी प्रजा समझता था। ऐसे समय में एक ब्राह्मण-कुलोत्पन्न बालक के लिये भी देवनागरी लिपि सिखाने और संस्कृत भाषा पढ़ाने का विचार किसके दिल में उत्पन्न हो सकता था? किन्तु फिर भी मालूम होता है कि लेखराम के हृदय में अपने धर्म्म के दृढ़ संस्कार छुटपन से स्थिर हो चुके थे। अपने धर्म्म की कथाएँ उन्होंने कहाँ से सुनीं और उन पर दृढ़ता कैसे हुई, इसका कुछ पता नहीं चलता; किन्तु यह स्पष्ट है कि लेखराम के चित्त पर धार्म्मिक घटनाओं का प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ा करता था।

अभी अक्षराभ्यास ही हुआ था कि शिक्षा-विभाग का चीफ मुहर्रिर परीक्षा लेने को आया और लेखराम की हाज़िर जवाबी से ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे विशेष पारितोषिक का पात्र समझा। सं० १६२६ में, जब लेखराम की आयु ११ वर्ष की थी, उसके चचा गण्डाराम पेशावर पुलिस में एक स्थिर स्थान पर नियत हो गये और उन्होंने लेखराम को अपने पास बुला लिया। इस स्थान में लेखराम को कई अध्यापकों के पास पढ़ने के लिये जाना पड़ा। अध्यापक यतः मुसलमान होते थे इसलिये मुसलमानी मत के अनुसार संस्कार लड़के के दिल पर बैठाने का प्रयत्न करते थे, परन्तु लेखराम की शङ्काओं से इतने तङ्ग आ जाते थे कि पढ़ाने से जवाब देकर चल देते। फिर लेखराम के चचा पेशावर से बाहिर के थानों में बदल गये; लेखराम भी उनके साथ गया। इस समय की एक घटना लेखराम के भविष्यत् जीवन का परिचय देती है। अपनी चाची को एकादशी का व्रत बड़ी श्रद्धा से रखते देखकर आपने भी उपवास करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। चाची ने यह कह कर समझाया कि बच्चे भूख को सहन नहीं कर सकते, हठ को छोड़ देना चाहिये। दृढ़-संकल्प लेखराम ने एक न मानी और नियम पूर्वक एकादशी के दिन उपवास करना आरम्भ कर दिया। जिनके पैतृक संस्कार ऐसे दृढ़ हों, उनको उत्तम शिक्षा किस उच्च अवस्था पर पहुँचा सकती है इसके सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस समय जब मनुष्य-शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलन में दिनों-दिन उन्नति हो रही है और जब कि शताब्दियों के पक्षपात छिन्न-भिन्न करके यूरोपियन शिक्षक आर्य्यों की प्राचीन विद्या से उपदेश ग्रहण करने में भी अपनी कुछ हतक नहीं समझते, यह कल्पना करना कठिन है कि आज से ३४ वर्ष पहिले पंजाब देश में सारी शिक्षा की समाप्ति कुछ फारसी के लिखे हुए पत्रों के साथ ही हो जाती थी। लेखराम को शारीरिक शिक्षा, वर्त्तमान सरकारी शिक्षा विभाग के कृत्रिम नियमानुसार, कुछ मिली वा नहीं इसका पता लगाना कठिन है; किन्तु उनका चौड़ा माथा, उनका खुला विशाल सीना, उनकी सिंह ठवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण थी कि ईश्वरीय नियमों की गोद में पले हुए बच्चों की शारीरिक अवस्था वैसी ही स्वाभाविक होती है जैसे कि ईश्वर के ज्ञान,

बल और क्रिया स्वाभाविक हैं। लेखराम को मानसिक शिक्षा क्या मिली ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए बड़े आन्दोलन की आवश्यकता नहीं। अपने चाचा महाशय गण्डाराम जी के पास यह चौदह वर्ष की आयु तक रहे, उसके पश्चात् सय्यदपुर चले गये और वहाँ के देहाती मदरसे में शिक्षा लाभ करने लगे। इस देहाती मदरसे के मुख्याध्यापक मुंशी तुलसीदास थे। लेखराम ने जो कुछ भी किताबी तालीम हासिल की वह इन्हीं की बदौलत थी, मुंशी तुलसीदास पुराने ढर्रे के स्वतन्त्र विचार वाले आदमी थे। इनका स्वभाव मस्त फकीरों का सा था, किन्तु साथ ही हृदय बड़ा ही पसीजने वाला और दूसरों के दुःख को अनुभव करने वाला था। मुंशी तुलसीदास आदमी को पहचानने की शक्ति रखते थे। कवि ने सच कहा है :—

"आदमी-आदमी अन्तर, कोई हीरा कोई कङ्कर"—किन्तु यह पता लगाना, कि हीरा कौन है और कङ्कर कौन, साधारण पुरुषों का काम नहीं।

किसी पुरुष विशेष की मानसिक उन्नति का पता लगाने के लिये उसकी लड़कपन की अवस्था के निरीक्षण करने वालों की सम्मति बहुत सहायता देती है। जहां लेखराम के प्रथम चौदह वर्ष के जीवन का ठीक वृत्तान्त उनके चचा महाशय गण्डाराम के लेखों से मिलता है, वहाँ उसके पश्चात् उनके शिक्षण सम्बन्धी जीवन तथा उनके मानसिक विकास का पता चकवाल निवउमरा खत्री वंशीय मुंशी तुलसीदास के लेखों से लगता है। मुंशी तुलसीदास का महाशय गण्डाराम के साथ बराबर पत्र-व्यवहार था। उनके पत्रों से लेखराम के विस्तृत होते हुए गुण, कर्म्म, स्वभाव का ठीक पता लगता है। किन्तु उन पत्रों में से लेखराम के जीवन सम्बन्धी लेखों को उद्धृत करने से पहिले मैं मुंशी तुलसीदास का उस समय का लेख इस स्थान में नकल करता हूँ जो लेखराम के महान् आत्म-समर्पण का समाचार सुन कर उन्होंने मुद्रणार्थ भेजा था। वह लिखते हैं :—

"स्वर्गवासी पण्डित जी अपने दोनों छोटे भाइयों (तोताराम और बालक-राम) सहित मेरे पास तालीम पाते रहे। धर्म्म पर शहीद होने वाले पण्डित जी का कद दर्मियाना, साँवला रंग, कुशादा (खुली) पेशानी, सियाह चश्म (पीछे

एक आँख में कुछ विकार सा बैठ गया था) हँसमुख थे। उस समय उनकी आयु १४ वा १५ वर्ष की होगी। बड़े सरल हृदय थे। कुरते की घुण्डी खुली है तो वैसी ही रही, पगड़ी का लड़ गले में है तो कुछ परवाह नहीं; किन्तु स्वभाव ऐसा तीक्ष्ण और स्मरण शक्ति ऐसी पहुँचने वाली कि कठिन से कठिन फारसी के पाठ को दोबारा उन्होंने कभी नहीं कहा था। जो पूछो नोक-जवान होता था । हिसाब में यकता, कसम-ए-हिन्द (भारत का इतिहास) उपस्थित इत्यादि। केवल गुलिस्तां पूरे बाब आठ और बोस्तान पूरे दस बाब नियमपूर्वक पण्डित साहिब ने मुझसे बातर्कीब पढ़े। फिर बहारदानिश आधा से अधिक कुछ सिकन्दरनामा और मुन्तखबात-ए-फारसी, जिसमें अनवार सुहेली सिकन्दरनामा, शाहनामा का कुछ इन्तखाब था। मगर इन किताबों की शिक्षा में यह हाल था कि दो-दो पन्ने उलटने पर शायद ही कभी कोई शब्द मुझसे पूछा हो, खुद ही उनकी सैर में किश्ती बर आब की तरह तैरते जाते थे" मुन्शी तुलसीदास जी के पत्र व्यवहार से कुछ लेख तिथिवार उद्धृत करना इस स्थान में बड़ा उपयोगी होगा। "चिरञ्जीव लेखराम रात के दस बजे तक मेरी कुटिया में रहता है। बहार दानिश में नजर सानी (पुनरावृत्ति) करता है। इस मदर्से में अपना सानी (बराबरी का) नहीं रखता। बर्खुरदार है" १६ फरवरी सं० १८७३ ई०—"लेखराम मानीटर हो गया।"

१० अगस्त १८७३ ई०। "मुंशी लेखराम मानीटर साहेब काम का तो नाम भी नहीं लेते, पढ़ाई का क्या जिक्र। अपनी जहूलत के शगल (कविता से मतलब है) से फुरसत नहीं पाते। खैर अब पहिले की निसबत कुछ सुधार पर आ गये हैं।"

८ सितम्बर १८७३ ई०। "मुंशी साहेब लेखराम अब तक अपनी जिहालत पर कमर बस्ता हैं। और तो सब कुछ रखते हैं मगर अकल (बुद्धि)। हाय अफसोस! अगर यह भी होता तो अन्दर बाहर आदमी होते।"

लेखराम के सम्बन्धी फकीरचन्द भी मुंशी तुलसीदास के पास ही पढ़ते थे। उनकी योग्यता की प्रशंसा करते हुए १८ फरवरी सन् १८७४ को उक्त मुंशी जी ने लिखा था—"लेखराम साहेब भी लेख तथा वक्तृत्वशक्ति में उनसे कम

नहीं किन्तु तनिक बुद्धि की कसर है।" यह बार-बार बुद्धि की कसर का जिक्र क्यों आता है और इससे अध्यापक का क्या मतलब है ? आगे चलकर कुछ स्पष्ट हो जाता है।

२४ अगस्त सं० १८७४—"लेखराम की प्रकृति के बदलने की ओर ध्यान दीजियेगा। विद्या से विनय उत्तम है और अकल शकल से······" लेखराम की प्रकृति में दास भाव पहले से ही न था, स्वतन्त्रता कूट-कूट कर बाल-बाल में भरी हुई थी। यही कारण था कि कई बार छात्रवृत्ति तथा पारितोषिक पाने पर भी वह कभी-कभी सरकारी शिक्षा-विभाग के बड़े कर्मचारियों को भी अप्रसन्न कर लिया करते थे।

इस समय से पहले ही लेखराम को कुछ तुकबन्दी का भी शौक हो चला था और फारसी तथा उर्दू के अतिरिक्त आप पञ्जाबी में भी तबियत लड़ाया करते थे। यद्यपि एक महाशय के लेख से ज्ञात होता है कि रिवाजी शृंगार की कविता की ओर भी लेखराम के दिल का झुकाव था परन्तु मुझे उनकी उस समय की लिखी हुई एक ही कविता मिली है, जिसका सदाचार के साथ सम्बन्ध है ! आपने पञ्जाबी बैंतुलबाजी हुक्के के विरुद्ध की है जो कवि के बल तथा निर्बलता दोनों का प्रकाश करती है।

"वे बाज्ञ हुक्क नहीं चीज भैड़ा
लख बदियांदा इबदता हुक्का।
खङ्ग गर्मी ते सौदासाह
चारों रोग करे बरपा हुक्का।
जूड़्ढा चक्खना चंगयां मन्दयाँ दा
कोई फायदा चादसाला हुक्का।
शूम धूम वाङ्गण चिलमकश जित्थे
बैठ करे ताजा जिस जा हुक्का।
गहर बाङ्ग स्याही स्याह करे
स्याही यही मुंहदे उत्तेमला हुक्का।

बू बदतर हैं बाङ्ग बोल थी भी

बोल बोलछड्डे सीना खा हुक्का ।

नेकमाश नू हुक्का बदनाम करदा

बाब नेकदे बुरा कमा हुक्का ।

एह ऐब मैंने दिते गिन सारे

कोई फायदा नहीं बस बसाय हुक्का ।

लेखराम बस बैठके नाम जपलो

नड़ी भन्नके देओ उड़ाय हुक्का ।''

नौकरी

लेखराम के परिवार में चिरकाल से उच्च शिक्षा प्राप्त करने की प्रणाली प्रचलित न थी। इनके दादा तो सर्वथा अशिक्षित ही थे, हाँ इनके चचा गण्डाराम जी ने कुछ फारसी उर्दू में अभ्यास किया था जिसके अनुकरण में उन्होंने भी इन्हीं भाषाओं का अच्छा अभ्यास कर लिया। किन्तु समय के प्रचलित विचारों के अनुसार सत्रह (१७) वर्ष की आयु वाले युवक का कर्त्तव्य था कि वह कमाई करके माता-पिता को आर्थिक सहायता देवे, इसलिए इस आयु से पहले ही इनको सरकारी नौकरी दिलाने की फिक्र हो रही थी। उस समय "निकृष्ट चाकरी" को ही अत्युत्तम तथा मान स्थानी समझा जाता था "उत्तम खेती" को गिरा हुआ किसानी का काम कहा जाता था, तभी तो महाशय गण्डाराम जी, उस समय जब कि लेखराम की आयु पूरे १६ वर्ष की भी न हुई थी, अपने भतीजे के गुरु को प्रेरित करते हैं कि वह इन्सपेक्टर मदारिस के पास लेखराम की नौकरी के लिए सिफारिश करे जिसके उत्तर में मुन्शी तुलसीदास लिखते हैं "अगर साहेब इन्सपेक्टर बहादुर तशरीफ लाए और इमतिहान भी अच्छा हुआ, तो मैं जरूर लेखराम की निसबत जबानी अर्ज करूँगा। आइन्दा उसकी किस्मत के तअल्लुक है।" सत्रहवां वर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ था कि लेखराम को उनके चचा ने पेशावर पुलिस में भर्ती करा दिया। उस समय क्रुस्टी साहब वहाँ की जिला पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। कैसी विचित्र घटना है कि जिन क्रुस्टी साहब ने लेखराम को पुलिस में भरती किया था, लेखराम के मारे जाने पर उन्हीं से मुझे घातक का पता लगाने के लिए विशेष प्रार्थना करनी पड़ी। क्रुस्टी साहेब ने मुझे बतलाया था कि जहाँ उन्हें मालूम था कि लेखराम अपनी निर्भयता तथा स्पष्ट वक्तृत्व के कारण कभी न

कभी मारा जायगा, वहाँ उसकी दृढ़ता के लिए उनके हृदय में सदा मान का भाव रहा करता था।

संवत् १९३२ के पौष मास में २१ दिसम्बर सं० १८७५ ई० के दिन, लेखराम पेशावर पुलिस में भरती किये गए। पुलिस की नौकरी का वृत्तान्त न तो मनोरंजक और न शिक्षादायक ही हो सकता है। अढ़ाई साल पीछे १) मासिक की उन्नति और फिर प्रत्येक वर्ष के पीछे सारजन्टी के एक-एक दर्जे की उपलब्धि का विस्तारपूर्वक वृत्तान्त भी हमारे पल्ले कुछ नहीं डाल सकता। संवत् १९३७ तक बराबर वेतनोन्नति होती रही, किन्तु उस संवत् की समाप्ति के लगभग लेखराम के आत्मा में कुछ विचित्र परिवर्तन होने लगा! पुलिस में नौकर होने से पहिले ही जब लेखराम अपने चचा के पास "सुआवी" में थे, एक धार्मिक सिक्ख सिपाही के सत्संग से उन्हें परमात्मा की उपासना का अभ्यास हो गया था। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में ही स्नान करके समाधि लगा बैठ जाते और दिन को गुरुमुखी अक्षरों में लिखी हुई गीता का पाठ करते। महाशय गण्डाराम जी लिखते हैं कि एक रात्रि को खटिया पर समाधि लगाए बैठे थे कि सबके देखते-देखते खटिया से नीचे आ रहे। सिर नीचे और पाँव खटिया के ऊपर हो गए, किन्तु इस अवस्था में भी वह अपने ध्यान में मस्त थे।

लेखराम के इस आरम्भिक ईश्वर-प्रेम की अवस्था पर पुलिस की नौकरी भी अपना कुछ असर न डाल सकी। संवत् १९२७ में फिर से वैराग्य की लहर उठी जिसने पुलिस की हुकूमत और सांसारिक ऐश्वर्य्य का नशा हिरन कर दिया। इस समय लेखराम के विचार सर्वथा नवीन वेदान्तियों के साथ मिलते थे। अद्वैत में निश्चय रखते हुए भी इन्होंने उपासना को जवाब नहीं दिया था और इसीलिये आजकल के वेदान्तियों की तरह वह अद्वैत मत को सांसारिक विषयों के भोग का साधन बनाने का प्रयत्न नहीं करते थे। गीता पढ़ने का परिणाम यह हुआ कि कृष्ण-भक्ति में अधिक श्रद्धा हो गई और रासलीला देखने की ओर रुचि बढ़ी, टीके लगा कर "कृष्ण कृष्ण" का जप करते रहते। कृष्ण-भक्ति में प्रेम इतना बढ़ा कि नौकरी छोड़ कर वृन्दावन निवास के लिये जाने को तैय्यार हो गये। इस समय

लेखराम की आयु २१ वर्ष की थी। माता ने विवाह की तैय्यारी कर दी परन्तु उस वैराग्य से प्रेरित हरि भक्त ने विवाह से सर्वथा इनकार कर दिया। महाशय गण्डाराम जी इस विषय पर लिखते हैं कि जब पत्र द्वारा मना करने से कुछ न बना तो वह स्वयं लेखराम को समझाने के लिये गये। उस समय उत्तर में लेखराम ने जो दृष्टान्त दिया उसे महाशय गण्डाराम जी इस प्रकार वर्णन करते हैं—"एक मिसाल सुनाई वह यह है—एक राजा के सामने नट तमाशा करने वाले आये। उनको राजा ने ५००) रु० इनाम देने की प्रतिज्ञा करके कहा कि योगी की नकल उतारो। एक नट ने इनाम के लालच से योगी की ठीक ज्यों की त्यों नकल उतारी किन्तु समाधि छोड़ते ही हाथ इनाम पाने के लिये पसार दिया। मतलब इस मिसाल से यह था कि गृहस्थ में रह कर दो काम नहीं हो सकते हैं। तब हम सब निराश हो गये और जिस देवी का नाता लेखराम के साथ हुआ था उसका विवाह उनके छोटे भाई तोताराम के साथ कर दिया।"

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम के पुराने उस्ताद तुलसीदास जी उन्हें मिलने के लिये पेशावर गये तो उनसे भी नौकरी छोड़कर संस्कृत पढ़ने के लिये देशान्तर जाने की इच्छा प्रकट की थी।

आर्यसमाज में प्रवेश

ऊपर लिखा जा चुका है कि पहिले-पहिल वैराग्य की लहर दृढ़ संकल्प लेखराम के हृदय में एक नवीन वेदान्ती सिक्ख सिपाही के सत्सङ्ग से उठी थी। उसी लहर ने मन रूपी समुद्र के जल तरङ्ग को विविध रूपों में बदल कर लेखराम को कहीं रासलीला के भंवर में घुमाया और कहीं गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों से घृणा दिलाई। किन्तु लेखराम की बुद्धि एक जागृत शक्ति थी; उसकी दृष्टि में यह भ्रम ठहर नहीं सकता था कि जीवात्मा ही ब्रह्म है और इसलिये वह कभी भी अपने उस समय के धार्मिक विचारों से सन्तुष्ट नहीं हो सकता था। इस समय की दो घटनायें लेखराम के उस स्वभाव को जो उसे पैतृक दाय में मिला था, बहुत स्पष्ट करती हैं; इसलिये उनका वर्णन लाभदायक होगा।

पेशावर में नौकरी के दिनों अकेले होने के कारण आटा लेकर रोटी बनवाने तन्दूर वाले की दुकान पर जाया करते थे। एक दिन शहर में किसी आदमी को एक बैल या गाय ने सींगों से घायल किया जिसकी चर्चा सारे बाजार में फैल गयी। तन्दूर वाले की दूकान पर भी यही चर्चा थी। पण्डित लेखराम तत्काल ही बोल उठे—"क्यों न गाय के सींग पकड़ लिये ? और नहीं तो लाठी मार कर हटा देना चाहिये था।" लोगों ने कहा—"महाराज गोमाता पर कैसे हाथ उठाता ?" इस पर अक्खड़ लेखराम के होंठ फड़कने लगे, आँखें लाल हो गईं और अधिक अटक-अटक कर बोले—"अगर मेरे सामने गाय या बैल आवे और मुझे मारने लगे और जान का खतरा हो तो

मैं तलवार से उसका सिर उड़ा दूँ।" इतना कहना था कि लोगों ने "दुष्ट ! हत्यारा ?" इत्यादि दुर्वचनों का तूफान मचा दिया और तन्दूर वाले ने लोगों के जोश से डर कर आटा ज्यों का त्यों लौटा दिया।

एक ओर तो रुकावट सामने आने पर इतना अक्खड़पन और दूसरी ओर एक और घटना सुनाता हूँ जिससे पता लगता है कि धर्म्म की जिज्ञासा ने उस तङ्ग जमाने में भी लेखराम को उदार सार्वभौम हृदय का स्वामी बना दिया था। पेशावर से एक महाशय लिखते हैं कि पण्डित लेखराम के मित्र महता कृपाराम जी ने उन्हें महम्मदी मत की पुस्तकों का अधिकतर पाठ करते देखकर एक दिन पूछा कि आप मुसलमानी मजहब की पुस्तकों को इतना क्यों पढ़ते हैं, क्या यदि महम्मदी मत आपको सच्चा लगे तो आप मुसलमान हो जायेंगे।" वहाँ उत्तर के लिये कुछ सोचने की आवश्यकता न थी; उत्तर मिला—बेशक ! अगर दस घड़े रक्खे हों और यह मालूम न हो कि ठण्डा पानी किस में है तो जब तक थोड़ा-थोड़ा पानी सब में से न पिया जाय तब तक कैसे पता लग सकता है कि किस घड़े का पानी ठण्डा और मीठा है। इसी तरह सब मतों की पुस्तकों की पड़ताल करके पता लगाना चाहिये कि सच्चा धर्म्म कौन सा है।"

इन दो उक्तियों से ही पण्डित लेखराम के स्वभाव के उतराव-चढ़ाव का कुछ पता लग जाता है।

इन्हीं दिनों जब गीता की सटीक पुस्तक काशी से मंगा कर उसे व्याख्या सहित पढ़ रहे थे पण्डित लेखराम को मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों के देखने की उत्कण्ठा हुई। तत्काल ही धर्म के प्यासे ने अलखधारी के सब प्रसिद्ध ग्रन्थ मंगा लिये जो पेशावर में आर्य्यसमाज स्थापना करते ही अपने अन्य ग्रन्थों सहित, उसकी भेंट कर दिये। पेशावर आर्य समाज के पुस्तकालय की सूची भी पण्डित लेखराम की ही लिखी हुई है, जिसमें ऋषि दयानन्द से मिली हुई अष्टाध्यायी के साथ-साथ "तोहफ़तुल इसलाम" और "पादाशुल-इसलाम" इत्यादि के नाम भी दर्ज हैं।

पंजाब में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के लेखों ने वैदिकधर्म के पुनर्जीवित करने में वही काम दिया जो ईसाई मत की स्थापना से पहले "यहुन्ना" [John the Baptist] के व्याख्यानों ने किया था। यदि क्रिश्चियन चर्च को ईसा का उपदेश समझाने के लिए यहुन्ना के व्याख्यानों की आवश्यकता थी तो आर्य्यसमाज को भी ऋषि दयानन्द का उद्देश्य समझाने के लिये अलखधारी की प्रचण्ड चोटों की जरूरत अवश्य थी। उस समय के नवशिक्षित पंजाबी, और कुछ कुछ संयुक्तप्रान्ती भी, अलखधारी को अपना "पैगम्बर" और "राहबर" मानते थे। अलखधारी के खुले स्पष्ट शब्द कुरीतियों से पीड़ित आर्य्य सन्तान को उत्साहित करने और उन्हें अन्ध परम्परा की कड़ी सांकलों को तोड़ने का बल प्रदान करने में बिजली का काम देते थे; किन्तु फिर भी पुराने ढर्रे के पौराणिकों पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। पौराणिक गढ़ को तोड़ने के लिए वेदशास्त्र रूपी प्रबल शस्त्रों की आवश्यकता थी, जिनके चलाने में निपुण एक ही कोपीनधारी संन्यासी शताब्दियों के पश्चात् दिखाई दिया था। अलखधारी ने उसी अखण्ड शस्त्रधारी बाल ब्रह्मचारी की शरण ली, और अपने लेखों की पुष्टि में स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों और लेखों का प्रमाण दिया। यही कारण था कि मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के सब चेले अन्त में ऋषि दयानन्द की पवित्र शरण में आये और आर्य्यसमाज के उत्साही सभासद बने। इसी प्रकार के सुशिक्षित युवक वीरों में से लेखराम एक था।

अलखधारी की पुस्तकों को पढ़ने से ही लेखराम को ऋषि दयानन्द के नाम और काम का पता लगा। तब इन्होंने अपने माने हुए अद्वैत मत की पड़ताल की और जब तक पूरी छान बीन करके अपने आपको परमात्मा का सेवक, पुत्र, भक्त न समझ लिया तब तक दम न लिया। इन्हीं दिनों समाचार पत्रों में ऋषि दयानन्द के धर्म्म प्रचार के काम की धूम मची हुई थी। लेखराम ने पत्र-व्यवहार आरम्भ करके ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों को मंगाया और संवत् १९३७ के अन्तिम भाग में ही पेशावर में आर्य्यसमाज स्थापित कर दिया।

आर्य्यसमाज की स्थापना तो हुई किन्तु उसकी सीमा लेखराम से बाहर न थी। जिन को मृत्यु के समय धर्म्म की मूर्ति माना गया और जिनके नाम के

साथ लगकर पण्डित शब्द अपने आपको स्वयं सम्मानित समझता था, उन्हें उस समय "लेखू" कह कर पुकारा जाता था। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"माया तेरे तीन नाम। परसू, परसा, परसराम।" इसी प्रकार कहा जा सकता है कि आत्मसमर्पण करने वाले लेखराम भी लेखू से लेखराम और फिर "धर्म्म वीर पण्डित लेखराम" बन गये। लेखू महाशय उस समय पेशावर नगर में 'माई रञ्जी की धर्म्मशाला' के अन्दर रहते थे। उसी स्थान में आर्य्यसमाज के साप्ताहिक नहीं प्रत्युत दैनिक अधिवेशन होने लगे। न कोई नोटिस लगाया जाता और न ढिंढोरा पिटवाया जाता; वैदिक धर्म्म का सिपाही लेखू अपने तीन चार मित्रों को समझाने बैठता। पाँच में चार मित्रों को तो समझा लिया और वे "खुद खुदा" कहलाने से लज्जित होकर परमपिता की शरण में आ गये किन्तु पाँचवाँ कट्टर नवीन वेदान्ती था जिसने लेखू को भी अद्वैत का पहला पाठ पढ़ाया था। जब वह किसी प्रकार भी काबू न आया तो लेखू से "लेखराम" बने हुए मित्र ने कहा—"कमबख्त! तेरी समझ में कुछ नहीं आता तब भी हमारी खातिर से ही आर्य्य बन जा। मित्र मण्डल तो न टूटेगा।" यह युक्ति प्रबल थी, काट कर गई। पाँचों ने मिल कर काम करना आरम्भ किया। कहते हैं कि "एक और एक ग्यारह" होते हैं। यहाँ तो—"पाँच पँचमिल कीजे काज। हारे जीते न आवे लाज" वाला मामला हो गया।

धर्म्म जिज्ञासु लेखराम ने आर्य्यसमाज तो स्थापित कर लिया और नियमपूर्वक नित्यकर्मों का पालन भी आरम्भ कर दिया किन्तु दूसरों को समझाने में कभी-कभी स्वयं डांवाडोल हो जाते। अन्य सर्व सिद्धान्तों का तो बड़ी प्रबल युक्तियों से मण्डन करते किन्तु जब अपने नवीन वेदान्ती मित्रों से बातचीत होती तो कभी-कभी निरुत्तर हो जाते। फिर थे भी तो अभी तक सुन्नी आर्य! एक लोकोक्ति है कि मुसलमानी मत सब रास्ते साफ करता और तलवार के जोर से लोगों को मुहम्मदा बनाता-बनाता जब अटक नदी के किनारे पहुँचा तब गुरु नानक ने कहा—"अब तो अटक।" गुरु महाराज के इस आदेशानुसार असली मुसलमानी मत अटक के उस पार ही रह गया; तब मुल्लाओं ने अपनी बाङ्ग देनी शुरू की जिसको सुनकर अटक के इस पारवाले

हिन्दू भी मुसलमान होने लगे । इसीलिए हिन्दुस्तान के मुसलमान सुन्नी कहलाते हैं ।

उपरोक्त लोकोक्ति के अनुसार लेखराम भी अब तक सुन्नी आर्य ही थे। उन्होंने मन में ठान लिया कि आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द से संशय निवृत्ति करने, और उनसे आशीर्वाद लेने के लिए उनकी सेवा में अवश्य जाना चाहिये। ऐसा दृढ़ निश्चय करते ही साढ़े चार वर्षों की नौकरी के पश्चात् एक मास की पहली छुट्टी (५ मई सं० १८८० ई० से) लेकर ११ मई को ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ अजमेर नगर की ओर चल दिये। लाहौर, अमृतसर, मेरठ आदि नगरों के प्रसिद्ध आर्यसमाजों में ठहरते हुए १६ मई की रात को अजमेर जा पहुँचे और १७ मई को सेठ फतेहमल जी की वाटिका में पहुँच कर ऋषि दयानन्द के प्रथम और अन्तिम बार दर्शन किए। इस समागम का हाल आर्य पथिक ने अपने शब्दों में इस प्रकार दिया है—

"स्वामी दयानन्द के दर्शन से यात्रा के सब कष्ट विस्मृत हो गए और उनके सत्य उपदेशों से सर्व संशय निवृत्त हो गए। जयपुर में मुझसे एक बङ्गाली ने प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी व्यापक है; दो व्यापक किस प्रकार एक स्थान में इकट्ठे रह सकते हैं। मुझसे इसका कुछ उत्तर बन न आया। मैंने यही प्रश्न स्वामी जी से पूछा। उन्होंने एक पत्थर उठाकर कहा "इसमें अग्नि व्यापक है वा नहीं ?" मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा—"मट्टी ?" मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा—"परमात्मा ?" मैंने कहा कि वह भी व्यापक है। तब कहा—"देखा ! कितने पदार्थ हैं, परन्तु सब इसमें व्यापक हैं। असल बात यह है कि जो (वस्तु) जिससे सूक्ष्म होती है वही उसमें व्यापक हो सकती है। ब्रह्म यतः सबसे अति सूक्ष्म है अतः सर्वव्यापक है।" इससे मेरी शान्ति हो गई।

मुझे उन्होंने आज्ञा दी कि जो संशय मुझे हों उनको निवारण करलूँ। मैंने बहुत सोच समझकर दस प्रश्न लिखे जिनमें से तीन मुझे याद हैं, शेष सब भूल गये—

प्रश्न—जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइए।

उत्तर—यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय सारा जीव ब्रह्म का भेद बतलाता है।

प्रश्न—अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए वा नहीं ?

उत्तर—अवश्य शुद्ध करना चाहिये।

प्रश्न—बिजली क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न होती है ?

उत्तर—विद्युत सर्व स्थानों में है और रगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की विद्युत भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है।

अन्त में मुझे आदेश दिया कि २५ वर्ष (की आयु) से पहले विवाह न करना।

ऋषि दयानन्द जी के थोड़े ही सत्संग ने लेखराम के धार्मिक विचारों को दृढ़ कर दिया और इसीलिए उसके पश्चात् हम वैदिक धर्म्म पर उनका विश्वास चट्टान की तरह दृढ़ पाते हैं।

वास्तव से मुक्ति

•

अजमेर से लौटते ही पण्डित लेखराम का पहला कारनामा उनके सारे शेष जीवन के पुरुषार्थ का एक दृष्टान्त मात्र है। एक दिन आप अपने पुराने परिचित सन्त दामोदरदास वेदान्ती के पास गए। सन्त जी ने कहा कि सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। लेखराम ने पूछा "महाराज ? आप भी ब्रह्म है, मैं भी ब्रह्म हूँ और यह पुस्तक भी ब्रह्म है ?" उत्तर हाँ में मिलते ही पण्डित लेखराम ने पुस्तक [जिसमें उपनिषदों का गुटका था] उठाली और वेदान्ती जी के माँगने पर फिर उनको न लौटाई। वह पुस्तक १६५२ तक पेशावर आर्यसमाज के पुस्तकालय में ग्रन्थकर्त्ता ने स्वयं देखी थी। ऋषि दयानन्द के प्रत्यक्ष सत्सग ने हमारे चरित्रनायक के मन पर स्वतन्त्रता तथा धर्मभक्ति का रङ्ग अधिक गाढ़ा कर दिया था, इसलिए अजमेर से लौटकर उन्हे दिन रात धर्म प्रचार की ही धुन लगी रहती थी। पेशावर आर्यसमाज की ओर से उर्दू का मासिकपत्र 'धर्मोपदेश' नामी जारी कराया जिसके सम्पादन का भार भी स्वयं ही उठाया। इसके साथ ही जनसाधारण में निडर होकर मौखिक धर्मोपदेश आरम्भ कर दिये। एक दिन विज्ञापन दिया कि मद्यपान निवारणार्थ व्याख्यान देंगे। व्याख्यान अंजमन के हाल में था जिस कारण जिले की डिप्टी कमिश्नर अन्य अंग्रेजों सहित पधारे। बहुत से सेनाधिकारी भी उपस्थित थे। लेखराम का व्याख्यान युक्तियुक्त तथा प्रभावशाली हुआ। एक फौजी कप्तान ने उसका समर्थन किया और बतलाया कि उसने भी अपनी सेना में मद्यपान को बन्द करा दिया है।

इस समय के पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट को जब पता लगा कि उनका नकशा-नवीस सार्जेण्ट लेखराम बहस मुबाहसे में बहुत ताक है तो प्राय. अपने डिप्टी

रीडर वजीर अली के साथ उनका मुबाहसा (शास्त्रार्थ) कराकर स्वयं आनन्द लूटा करते। मुझे बतलाया गया है कि यह साहेब बहादुर प्रायः लेखराम के कथन का ही समर्थन किया करते थे।

किन्तु "सब दिन जाते न एक समाना" अपनी धुन में मस्त लेखराम को उस गहरी नींद से जागना पड़ा क्योंकि नये पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट के आने पर बहुत सी तबदीलियाँ हुई। इसी चक्र में लेखराम को पेशावर शहर से थाना "सुआबा" में बदला गया। बाहर जाकर भी अपने प्रिय मासिक पत्र 'धर्मोपदेश' के लिए यथाशक्ति लेख भेजते रहे और समाज का मासिक चन्दा १) सैंकड़ा के स्थान में बराबर ५) सैंकड़ा देते रहे। जाने को पेशावर से बाहर चले तो गए किन्तु धर्म प्रचार की इच्छा रूपी प्रचण्ड अग्नि कहीं थोडा ही मन्द पड़ गई थी? वहाँ पर भी महम्मदियों से बहस मुबाहसा जारी रहा। एक दिन पुलिस इंसपेक्टर ने, जो थाने का मुलाहिजा करने आया था, लेखराम को मुबाहिसे में फंसा लिया। लेखराम भला धर्म के मामले में कब लिहाज करने वाले थे? उत्तर मुँह तोड़ दिए। उस समय तो इन्सपेक्टर साहब अपना सा मुँह लेकर चुप हो गए किन्तु दूसरे दिन ही "अदूल हुकमी" (आज्ञा भंग) के अपराध में रिपोर्ट कर दी। तब १२ जून १८८३ को सदर से हुकुम आया कि "छः मास के लिए लेखराम का एक दर्जा तोड़ दिया जावे और वह थाना कालूखाँ में बदला जावे।"

सुआबी के थाने में रहते हुए जो उर्दू भारत-दण्ड-संग्रह की पुस्तक लेखराम के पास थी उसके पहले पृष्ठ पर एक लष्टम पष्टमसा चित्र खींच कर आपने उसके ऊपरले भाग में "ओ३म्" लिखा था और उससे ऊपर एक झण्डे की शकल बनाई; अर्थात् उसी समय से यह निश्चय दृढ़ कर लिया था कि 'ओ३म्' का झण्डा किसी दिन सारे भूमण्डल पर फहरायेगा और सर्व-मतों का शिरोमणि बनेगा।

थाना सोआबी में होते हुए ही लेखराम के साथ महम्मदियों का द्वेष बहुत कुछ बढ़ चुका था; उसको अपने धर्मकार्यों के लिए समय भी कम मिलने लगा। "धर्मोपदेश" के जीवन का सारा निर्भर केवल अकेले लेखराम की

लेखनी पर ही न था प्रत्युत उसकी आर्थिक दशा को ठीक रखने का बोझ उठाने वाला भी कोई और न था। जब पेशावर आर्यसमाज ने अधिक घाटा देखकर 'धर्मोपदेश' को बन्द करने की ठान ली तो एक मास के घाटे के लिए ५) लेखराम ने ही भेज दिए। इस पर भी जब मासिक पत्र की इतिश्री का ही निश्चय हुआ तो पंडित लेखराम ने अपने चचा को लिखा— 'जो निश्चय आपने तथा आर्यसमाज (पेशावर) के सर्व सभासदों ने 'धर्मोपदेश' को बन्द करने के विषय में किया है, वह तो शिरोधार्य्य है परन्तु यह वाक्य कि हमारी समाज की उन्नति नजर नहीं आती, यह पाँच छः रुपये मासिक समाज की उन्नति में व्यय करना चाहिये, इत्यादि मुझे चिन्ता (में डालते हैं)………… मजमून रिसाला धर्मोपदेश, जो मैंने भेजा था, लौटा दीजिए, ताकि उसको आर्य समाचार मेरठ में छपवाया जावे, (मेरे) मौजूदा पाँच रुपयों में से ३) महम्मद मालिक मतबाअशरांफी को दे दें और २) अपने हिसाब में जमा फरमावें।'' ये शब्द स्वयं बोल रहे हैं, इन पर किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं।

फिर सिवाय इसके और क्या हो सकता था कि रिसाला धर्मोपदेश को बन्द कर दिया जाय। लेखराम के इसके पहले मानसिक बच्चे का अन्त्येष्टि सस्कार मार्च सवत् १८८३ ई० को हो गया। थाना कालूखाँ में पहुँचने से पहले ही लेखराम के कट्टरपन की धूम महम्मदियों में मची हुई थी, किन्तु इस दुष्कीर्ति के होते हुए भी वह अन्य मतावलम्बियों को अपने धर्म के सिद्धान्त समझाने के उद्देश्य से ऐसा प्यार करते थे कि पक्षपातियों से न भड़काये हुए सर्वसाधारण मुसलमान उनके साथ प्रेम करने के लिये बाधित हो जाते। थाना कालूखां के विषय में मुझे केवल पेशावर की पुलिस-आज्ञा-पुस्तक से दो आज्ञाओं की नकल मिली है, जिनसे पता लगता है कि वहाँ के मुसलमान सब-इन्सपेक्टर और सारजण्ट लेखराम का एक दर्जा, किसी ''हजरत—शाह चौकीदार'' के मुकद्दमे में गफ़लत (असावधानी) दिखाने के कारण तोड़ दिया गया था। ये दोनों आज्ञाएँ ६ जून, सं० १८८४ ई० को निकलीं, किन्तु इनके निकलने से पहले ही लेखराम सारजण्ट को दफ्तर पुलिस में तबदील कर दिया था और वहाँ से उसे साहब असिस्टेण्ट मजिस्ट्रेट की पेशी में लगाया गया। यह बात प्रसिद्ध

थी कि अपराध तो थाना कालूखाँ के मुसलमान सबइन्सपेक्टर अकेले का था, किन्तु लेखराम अपनी निडर हाजिर जवाबी के कारण बिना अपराध के ही दण्डनीय समझा गया, मुसलमान पुलिस अफसरों ने समझा कि पेशावर में बुलवाकर वे लेखराम का मुँह बन्द कर देंगे, किन्तु इस अत्याचार ने दासत्व की बेड़ियों को काटने और लेखराम का मुँह स्वतन्त्रता से खुलवाने में प्रबल सहायता दी, और २४ जुलाई सं० १८८४ ई० को सदा के लिए स्मरणीय दिन लेखराम ने पुलिस की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और लिख दिया कि दो महीने की कानूनी मियाद के पीछे उसे रोकने का किसी को भी अधिकार न होगा। दो मास के पश्चात् २४ सितम्बर १८८४ ई० को यह त्यागपत्र फिर पेश हुआ। लेखराम को त्यागपत्र लौटाने के लिए अंग्रेज हाकिमों ने बहुतेरा समझाया, किन्तु वहाँ तो लगन और ही लग चुकी थी; हमारे वीर चरित्र-नायक ने किसी की न सुनी और ३० सितम्बर १८८४ ई० से त्यागपत्र की मञ्जूरी का हुकुम २४ सितम्बर को ही अपने हाथ से लिख और निकलसन साहब के उस पर हस्ताक्षर कराके मनुष्यों के दासत्व से स्वयं सदा के लिये मुक्त हो गये। इस दासत्व की सांकल के कटते ही लेखराम पुलिस सारजण्ट पण्डित लेखराम बन गये।

यह बात प्रसिद्ध है कि यवनों के संसर्ग से पञ्जाब प्रान्त में मांस-भक्षण का प्रचार आर्य्य जाति में भी बहुत था और सीमा प्रान्त के जिलों में से पेशावर तो उस समय भी मांसाशियों का गढ़ समझा जाता था। यही कारण था कि पञ्जाब के पहले आर्य्यसमाजियों ने अहिंसा धर्म्म के पालन की ओर अधिक रुचि नहीं दिखाई थी। मूर्तिपूजा और मृतकश्राद्ध के खण्डन में जो बड़े अग्रणी थे, वे सन्ध्या अग्निहोत्र के अभ्यास और मद्य मांसादि से वैराग्य को आवश्यक नहीं समझते थे, कारण यह था कि पहले-पहल बहुधा नकली और असली आर्य्य बहुत थे। किन्तु पण्डित लेखराम असली आर्य्यों में एक ऊँचा पद रखते थे। मद्य तो पहले से ही उनके लिए घृणित वस्तु थी किन्तु मांसभक्षण को भी पापों में से एक समझते थे। सन्ध्या में अनध्याय को वह सबसे बढ़कर पाप मानने लगे थे। मुझे यह पता नहीं लगा कि उन्हीं दिनों नित्य हवन का प्रारम्भ किया था वा नहीं, किन्तु उनके अन्य चरित्रों से यही अनुमान होता है

कि वैदिक धर्म्म की शरण में आते हुए उन्होंने सच्चे धर्म्म की प्राप्ति को जीवन और मृत्यु का प्रश्न समझा था।

यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—'होन हार विरवान के चिकने चिकने पात।" पण्डित लेखराम पर यह लोकोक्ति सर्वाङ्ग में चरितार्थ थी। जिस आर्य्यपथिक ने धर्म्म प्रचार के लिए यात्रा करते हुए दिन-रात को एक कर देना था, जिस लेखवीर ने सत्य धर्म्म की रक्षा के लिये अपूर्व ग्रन्थ लिखने थे और जिस शास्त्रार्थ के धनी ने वैदिक धर्म्म के विरोधियों को स्थान-स्थान पर निरुत्तर करना था, उसको आर्य्यसमाज में प्रवेश करते ही शास्त्रार्थ तथा लेख का अभ्यास हो चला था।

पेशावर आर्य्यसमाज के भाइयों की कृपा से मुझे लेखराम की सभासदी के समय के सब रजिस्टर मिल गये हैं। एक ओर तो समाज का सारा आय-व्यय का हिसाब लेखराम के हाथ का लिखा हुआ है और दूसरी ओर आये गये पत्रों की प्रतिलिपि लगभग उन्हीं के हाथ की है, आये हुए पत्रों की नकल तो किसी अन्य के हाथ की है, किन्तु जो पत्र भेजे गये उनका सारांश प्रायः पण्डित जी का अपना लिखा हुआ है। ८ फरवरी १८८२ ई० को आपने पादरी एम० वेरी साहब से इन्जील के ईश्वरीय ज्ञान हो तथा मुक्ति के लिए ईसा पर ईमान लाने की जरूरत पर शास्त्रार्थ का घोषणापत्र भेजा। इसका जो उत्तर पादरी साहब की ओर से आया वह बड़ा गोल-माल है। इस समय समाज के मन्त्री होते हुए भी पण्डित लेखराम अपने आपको "मैनेजर पेशावर आर्य्य-समाज" लिखा करते थे और थे भी तो सर्व प्रकार के प्रबन्धकर्ता ही।

पेशावर शहर से जब पुलिस की नौकरी में बाहर बदल गये थे, तब भी मासिक चन्दा देते हुए आर्य्यसमाज पेशावर के सभासद बराबर बने रहे। एक बार किसी काम के लिए पेशावर आये तो साप्ताहिक अधिवेशन में, जो एक तहसीलदार की धर्मशाला में हो रहा था, सम्मिलित हुए। साप्ताहिक अधि-वेशन की समाप्ति पर अन्तरङ्ग सभा के सभासद बैठे रहे और विचार यह होने लगा कि जिन तहसीलदार महाशय की धर्मशाला अधिवेशनों के लिए मिली है उनको ही समाज का प्रधान बनाया जाय। तहसीलदार साहब भी विराजमान थे। पण्डित लेखराम ने बिना संकोच के कहा--"यह माँस खाते

श्रौर शराब पीते हैं। ऐसा आदमी प्रधान नहीं होना चाहिए।" अन्य सब सभासद तहसीलदार साहब को प्रधान बनाने पर तुल गए। तब पण्डित लेखराम अप्रसन्न होकर उठ गए, क्योंकि ऐसे विचार को सुनना भी वह पाप समझते थे।

सं० १८८२ ई० में जब पण्डित लेखराम अभी पेशावर में ही थे ऋषि दयानन्द की ओर से उन्हें दो पत्र मिले। एक के साथ गोरक्षा-विषयक प्रार्थना पत्र प्रजा के हस्ताक्षरों के लिए था और दूसरे में पंजाब में हिन्दी प्रचार के लिए शिक्षा कमीशन को मेमोरियल भेजने की प्रेरणा थी। दोनों कार्य्य पण्डित लेखराम ने बड़े उत्साह से कराये।

अभी पण्डित लेखराम पेशावर से बाहर थानों में ही घूम रहे थे कि उनके पास कादियाके "मिर्जा गुलाम अहमद" की बनाई पुस्तक "बुराहीन अहमदिया" पहुँच गई, जिनमें मिर्जाजी ने पहले पहल पैगम्बरी का दावा किया था, साथ ही यह पता लगा कि मिर्जा गुलाम अहमदके बड़े चेले हकीम नूरउद्दीन की सङ्गतसे जम्मूमें एक ठाकुरदास नामी हिन्दू महम्मदी मत स्वीकार करने को तय्यार है। पण्डित लेखराम तीन चार बार छुट्टी ले ले कर उसे समझाने के लिए जम्मू गये और इनका पुरुषार्थ इतना फलदायक हुआ कि ठाकुरदास कादियानीका गुलाम बनने से बच गया।

इन्हीं दिनों पण्डित लेखरामने मिर्जाकी "बुराहीन" के चारों हिस्से पढ़ डाले और जब चौथे भागमें आर्य्यसमाज और आर्य्यसिद्धान्तों पर विषमय आक्रमण देखे तो तत्काल ही उस पुस्तकका उत्तर लिखना आरम्भ कर दिया। आर्य्यपथिकको जिस बातकी धुन लगती उसके आरम्भ करनेमें एक पलकी देर करना भी उन्हें दूभर हो जाता था। वहाँ नया कागज मंगानेका समय कहाँ था, आर्य्यसमाज पेशावर के रजिस्टर पर ही उत्तर घसीटने लग गये।

जम्मू में पण्डित लेखराम पण्डित नारायण कौल के यहाँ ठहरे जो प्रसिद्ध पण्डित मनफूल के भाई थे। यह महाशय अरबी तथा फारसी के बड़े विद्वान् थे इनसे पण्डित लेखराम को "बुराहीन अहमदिया" के खण्डन में बड़ी सहायता मिली।

धर्मान्दोलन तथा धार्मिक विषयों के विचार में तो लगन पहले से ही लग चुकी थी, ऋषि दयानन्दकी धर्म तथा देशके लिए, शोकजनक मृत्युने और भी अधीर कर दिया और सारे संसारको वैदिक धर्मके झण्डेके नीचे लानेका कर्त्तव्य भी लेख-वीर ने अपना ही समझ कर धर्म-वीरका पद प्राप्त करने की ओर पग उठाया। कोई आर्य्य जातिमें से ईसाई वा मुसलमानी मतों की ओर झुके तो उसे बचानेका बीड़ा लेखराम उठाते थे! जन्म के ईसाई और मुसलमान को वैदिक धर्मकी शरणमें लानेका अपना कर्त्तव्य बतलाते थे; वैदिक धर्मपर कोई भी आक्षेप हो उसका उत्तर देना इनका कर्त्तव्य था और प्रत्येक प्रकार के नास्तिकत्वका खण्डन इनका ही धर्म था।

इन्हीं दिनों यह समाचार गरम था कि मुजफ्फ़रनगर के रईस, चौधरी घासीरामजी महम्मदी मतकी ओर झुके हुए हैं। ऐसा भी अनुमान होता है कि शायद उस अवसरपर छुट्टी न मिलनेके कारण ही पण्डित लेखरामने सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया हो। मेरे चचा उन दिनों मुजफ़्फरपुर में पुलिस इन्सपेक्टर थे। उनसे मुझे पता लगा कि आर्य्य उपदेशकोंने महम्मदी मौलवियों-को लाजवाब कर दिया था।

कुछ ही हो पण्डित लेखरामने अपना त्यागपत्र स्वीकार होने तक कादियानी मिर्जा के जवाबमें "तकजीब बुराहीनअहमदियाका प्रथम भाग" तय्यार करके लिख लिया था।

धर्म प्रचार में अनुराग

वासत्वसे मुक्त होते ही सबसे पहले आर्यसमाज रावलपिन्डीके वार्षिकोत्सव पर पहुँचे। उन दिनों वे बड़े वक्ता न थे कि विना लिखे कोई विषय निभा सकें किन्तु फिर भी एक लेखबद्ध व्याख्यान उस उत्सव में पढ़ा। उसका शीर्षक था—"आर्यधर्म के आलमगीर होने के सबूत और उसके आइन्दा तरक्की के निशान मजबूत।" काफ़िया मिलाने का पहले से ही शौक था। यह व्याख्यान लाला गङ्गाराम धमने मेरे पास रावलपिन्डी आर्यसमाज के कार्यालय से निकाल कर भेजा था जो २१ तथा २८ आषाढ़, सवत् १९५४ के सद्धर्म-प्रचारक में छप चुका है। इस व्याख्यान में पण्डित लेखराम ने यह बड़ा उदार भाव प्रकट किया था कि :—

"स्वामी दयानन्द और बाबा नानकजीके खयालात वाहिद थे। मेरे ख़याल में वह (बाबा नानकजी) वेदोक्त धर्म को तरक्की देने वाले थे और हत्तलवसा (यथा शक्ति) उन्होंने आर्य्य धर्म फैलाने में बहुत कोशिश की।" रावलपिन्डी से गुरुदासपुर पहुँच कर एक ओर तो मिर्ज़ा साहेब को शास्त्रार्थ के लिए चैलेञ्ज भेजा और दूसरी ओर १ अक्तूबर १८८४ को विज्ञापन देकर बड़ी जनता की उपस्थितिमें उनके आक्षेपोंके उत्तर पढ़े गये। मिर्ज़ा गुलाम अहमदने तो आना ही क्या था हाँ आर्यजगत् में जो खलबली मिर्ज़ा के ग्रन्थने मचाई थी वह दूर हो गई। पण्डित लेखरामकी यह पहली पुस्तक ऐसी ज़बरदस्त समझी गई कि बहुत लोगोंने इस की हस्तलिखित प्रतियां बड़ा व्यय करके, प्राप्त कीं।

गुरुदासपुर में व्याख्यान देने के पश्चात् पण्डित लेखराम लाहौर लौट गये

श्रौर वहाँ कुछ दिनों, उपदेश का कार्य भी जारी रखते हुए, सस्कृत व्याकरण का अभ्यास करते रहे। पण्डित लेखराम इस समय दृढ़ता से संस्कृत साहित्य, विशेषतः वैदिक साहित्य का स्वाध्याय नियम पूर्वक गुरुमुख से करना चाहते थे किन्तु यह काम प्रथम आश्रम की शान्त अवस्था में ही हो सकता है। पण्डित लेखरामके अन्दर, ससारमें अविद्या का राज्य देख कर बडी भारी हल चल मच चुकी थी। ऋषि दयानन्द की अकाल मृत्यु ने उनका उत्तरदातृत्व बहुत बढ़ा दिया था, इसलिए जब उस क़ादियानी मिर्जा की ओर से, जसिके "झूठे दावोंका तरदीद" यह ग्रन्थ रूपमें कर चुके थे, एक विज्ञापन देखा, जिसमें उसने महम्मदी मतकी पुष्टि में चमत्कार (Miracle) दिखाने की प्रतिज्ञा की थी, तो इनसे न रहा गया।

मिर्ज़ाजी ने अपने इश्तिहार में चौमुखी लड़ाईकी घोषणा दी थी। उन्होंने सर्व मतस्थ पुरुषों को इस लाभ की दावत दी थी और अपने आपको "खुदा का पैग़ाम्बर" सिद्ध करने के लिए प्रतिज्ञा की थी कि यदि क़ादियां में एक वर्ष तक रख कर वह कोई दैवी चमत्कार (आसमानी निशान) न दिखा सकें तो इस प्रकार एक वर्ष रहे हुए मनुष्यको २००) मासिक के हिसाबसे २४००) देंगे। पण्डित लेखरामने जब यह इश्तिहार पढ़ा उस समय वह अमृतसर में थे। विज्ञापन पढ़ते ही उन्होंने ३ अप्रैल, १८८५ ई० को मिर्जाजी के नाम पत्र लिखा जिसमें उनकी शर्तोंको स्वीकार करक प्रतिज्ञा की कि जिस समय वह २४००) सरकारी कोष में दाखिल करने की सूचना देंगे उसी समय लेखरामजी स्वयं क़ादियां में पहुँच जायेंगे। इसके उत्तर में मिर्ज़ाने एक नई अड़चन लगाई कि वह साधारण पुरुषों से वाद-विवाद नहीं करना चाहता, उसके साथ कोई अपने सम्प्रदाय का प्रामाणिक और प्रसिद्ध आदमी ही जुटे तो वह तय्यार होगा। यह पत्र पण्डित लेखराम के पास लाहौर में ९ अप्रैल १८८५ को पहुँचा और उसी दिन उन्होंने इसका उत्तर दे दिया, जिसमें पहले मिर्ज़ा की नयी अड़चन का खण्डन किया और लिखा कि उन्हें धनका लालच इस असली मुबाहसे के लिए नहीं खींच रहा प्रत्युत सत्यासत्य के निर्णय के लिए वह तय्यार होकर मैदान में आना चाहते हैं। इसके पश्चात् मिर्जाजीने नयी बाधा खड़ी की। उन्होंने पण्डित लेखरामसे भी २४००) जमा

कराने की नयी याचना की। इसी प्रकार प्रत्येक नए पत्रमें मिर्जाजी ने नए-नए अडङ्गे लगाये, जिनके मुँहतोड परन्तु सभ्यतामय, उत्तर पण्डित लेखराम ने दिये। यह पत्र-व्यवहार ५ अगस्त १८८५ तक बराबर जारी रहा किन्तु परिणाम कुछ भी न निकला।

इसी अन्तरमें पण्डित लेखरामने अमृतसर और लाहौरमें प्रचार करनेके पश्चात् १८ अप्रैलको पेशावरको प्रस्थान किया। आर्य्यसमाज पेशावरके पहले भी प्रधान थे। २५, २६, अप्रैलको अपने प्रिय आर्य्यसमाजके वार्षिकोत्सवमें सम्मिलित हुए और उस अवसरपर व्याख्यान देनेके अतिरिक्त २९ अप्रैल तक धर्म प्रचार किया। आगामी वर्ष के चुनावमें पण्डित लेखराम ही प्रधान नियत हुए और पञ्जाब की ओर लौट आये। इस ओर भी बराबर धर्म-प्रचार करते हुए २० जुलाई ५ अगस्त तक अमृतसर में निवास किया। इस स्थान में उन्हें मिर्जा गुलाम अहमद के उत्तरों की प्रतीक्षा रही।

जब मिर्जाजी की ओर से कोई उत्तर न मिला और तीन मास व्यतीत हो गये (जिस अन्तरमें पण्डित लेखराम धर्म प्रचारका कार्य्य करते और साथ साथ पुस्तकें लिखनेका काम भी जारी रखते गये) तो आर्य्य मुसाफिर ने मिर्जाजीको स्मरणार्थ एक पोस्टकार्ड भेजा जिसके उत्तरमें मिर्जाजी ने लिखा —"कादियां कोई दूर तो नहीं है, आकर के मुलाकात कर जाओ। उम्मीद कि यहाँ पर बाहमी (परस्पर) मिलनेसे शरायत तै हो जावेगी।" धर्मवीर आर्य्य मुसाफिरको तो केवल हाथ अटकानेको स्थान चाहिए था, वह उसी समय मिर्जाजीकी परीक्षाके लिए तय्यार हो गये और जिस चालबाज़ बाघ के पास जानेसे बड़े-बड़े मतवादी डरते थे निःशङ्क उसके साथ उस ही मकान में "दस्त पञ्जा' लेने के लिए जा पहुँचे।

पण्डित लेखराम जी पूरे दो मास कादियां में रहे। एक ओर तो उन्होंने मिर्जा जी के "इस्लामी कोठे" पर जा-जा जाकर उनका नाक में दम कर दिया। तीन बार कई भद्र पुरुषों को साथ लेकर गये और तीनों बार मिर्जा जी को निरुत्तर करके लौटे। और दूसरी ओर खुले व्याख्यानों में न केवल मिर्जा जी के "बुराहीन" की ही कलई खोली, बल्कि उनकी इलहामी चालबाजियों का भी भण्डा फोड़ दिया, जिससे मिर्जा की आमदनी में बड़ी बाधा पड़ गई।

इन्हीं दिनों कादियां में आर्य्यसमाज भी स्थापित हो गया जिसमें मिर्जा जी के फांसे हुए बहुत से भोले हिन्दू भी सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य की शरण में आये ?

मिर्जा गुलाम अहमद का नाक में दम कर और कादियां में एक जबरदस्त आर्य्यसमाज स्थापित करके पण्डित लेखराम फिर अन्य स्थानों में वैदिक धर्म का प्रचार करने चले गये। बटाला आदि नगरों में धर्मोपदेश देकर तृषित आत्माओं को शीतल सद्धर्म रूपी जल पिलाते हुए आर्य्यपथिक अम्बाले पहुँच कर अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे थे जब उन्होंने सुना कि कादियां के ,'विष्णुदास" नामी हिन्दू को बुलाकर मिर्जा जी ने कहा है कि वह एक साल के अन्दर मुसलमान न हो जायगा तो उनके "इलहाम के मुताबिक" वह मर जायगा। २ दिसम्बर, १८८५ को विष्णुदास को मिर्जा जी ने यह धमकी दी और तार पहुँचते ही ४ दिसम्बर को पण्डित लेखराम बिजली की तरह कादियां में आ चमके। उसी दिन विष्णुदास को बुलाकर समझाया और खुले व्याख्यान में मिर्जा जी की फिर से वह कलई खोली गई, कि भूला भटका भाई सचमुच व्यापक विष्णु भगवान् का दास बनकर आर्य्यसमाज का सभासद बन गया और उसी दिन से मिर्जा जी की कुटिल नीतियों का खण्डन होने लगा।

क्रियात्मक आर्य्य मुसाफिर बनना

सं० १८८६ ई० के आरम्भ में पण्डित लेखराम की योग्यता की आर्य्य-जगत् में धूम मच गई थी। "तकजीब बुराहीन अहमदिया" का प्रथम भाग ठीक प्रबन्ध न होने से अभी छप नहीं सका था परन्तु उसकी नकलें होकर दूर-दूर पहुँच चुकी थीं। महम्मदियों के मुकाबिले पर आर्य्यसमाजियों ने उस पुस्तक की युक्तियों से काम लेना आरम्भ कर दिया था। जहाँ कहीं मुसलमानों से मुबाहिसे की छेड़छाड़ होती वा उनका कुछ भी जोर होता वहीं से पण्डित लेखराम को निमन्त्रण पहुंच जाता।

इस ईसवी सन् के मार्च मास में मिर्जा गुलाम अहमद होशियारपुर में गये। वहाँ आर्य्यसमाज के प्रसिद्ध सभासद् मास्टर मुरलीधर जी गवर्नमेंट स्कूल में ड्राइङ्ग मास्टर (आलेख्याध्यापक) थे। मास्टर जी उन आर्यों में से थे जो वेद-विरुद्ध मतों की पोल खोलने के लिये हर समय तय्यार रहते हैं। मिर्जा जी की डीङ्गों को सुनकर मास्टर जी से रहा न गया और ११ मार्च, १८८६ की रात को उन्होंने मिर्जा जी के डेरे पर पहुँच कर मुहम्मद साहब के चांद के टुकड़े करने वाले चमत्कार (मोजज़े) पर लेख बद्ध आक्षेप किये। अनुमानतः ५ वा ६ घण्टों तक प्रश्नोत्तर होते रहे। फिर १४ मार्च १८८६ के दिन मिर्जा जी ने यह प्रतिज्ञा स्थापन की कि रूह (जीवात्मा) अनादि नहीं, पैदा की हुई (हादिस) है। इस प्रश्न के सुनाने और बातें बनाने में ही मिर्जा जी ने दो अढ़ाई घण्टे समाप्त कर दिये और फिर पांच ६ घण्टों तक प्रश्नोत्तर होते रहे। मिर्जा जी को इस समय रुपये बटोरने की सूझ रही थी और गम्भीर विषय

की पुस्तकों की अपेक्षा बटेरबाजी वाली पुस्तकें अधिक बिकती हैं, इसलिए इस मुबाहिसे पर अपने ढङ्ग का निमक मिरच मसाला चढ़ाकर उन्होंने एक २६० पृष्ठों की पुस्तक "सुरमा चश्म आरिया" (अर्थात् आर्य्यों की आँखों के खोलने के लिये सुरमा) शीर्षक देकर छपवा दी।

पण्डित लेखराम के दिल पर चोट तो इस पुस्तक के छपने से बहुत लगी परन्तु अभी पहली तय्यार की हुई पुस्तक ही नहीं छपी थी; इसलिये उसकी छपाई में लगकर इस बात की भी प्रतीक्षा करते रहे कि मास्टर मुरलीधर जी ही दूसरी पुस्तक का उत्तर छपवावें। किन्तु जब जुलाई सं० १८८७ को "तकजीव बुराहीन अहमदिया" का प्रथम भाग छप करके हाथों हाथ बिक गया और आर्य्यपथिक को पता लगा कि मास्टर मुरलीधर जी को सरकारी नौकरी के कारण उत्तर लिख कर छपवाने का अवकाश नहीं है तो उन्होंने स्वयं ही मिर्जा के दूसरे आक्रमण का उत्तर भी तय्यार किया, और उसका नाम रक्खा "नुसखा-खब्त अहमदिया"। इस नाम-करण का हेतु स्वयं आर्य्यमुसाफिर ने इस प्रकार दिया है—"असल में यह मिर्जा के एतराज माकूलियत से कोसों दूर है और साथ ही बेजा शेखी और लगवीयत (झूठ) से तमाम किताब भरपूर है जो रास्ती नहीं बल्कि इलहामी खब्त (पागलपन) मालूम होता है, पस, जरूर हुआ कि हम वैदिक हिकमत से उनके खब्त का इलाज करें, ताकि खुदा सेहत दे; बिना बरां इस रिसाले का नाम "नुसखा खब्त अहमदिया रखा गया।"

सं० १८८६ के प्रथम भाग में विविध स्थानों में प्रचार करके पण्डित लेखराम फिर अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में पेशावर आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर पहुँचे और अपने व्याख्यानों से अपने प्रथम स्थापन किये हुए आर्य्यसमाज को लाभ पहुँचाया। फिर स्थान-स्थान पर व्याख्यान देने के साथ-साथ ही पादरी खड़कसिंह के छः व्याख्यानों के उत्तर लिखकर भी छपवाये और बहुत-सी छोटी-छोटी पुस्तकें अवैदिक सिद्धान्तों के खण्डन में निकालीं।

पण्डित लेखराम के इस वर्ष के काम के विषय में १६ अक्टूबर, १८८६ की आर्य-पत्रिका में एक महाशय ने इस प्रकार लिखा था:—

"लेखराम आर्यसमाज लाहोर का एक कट्टर सभासद है। इसने अपना जीवन समाज के लिए बलिदान कर दिया है। यह अरबी और फारसी का

बड़ा विद्वान् तथा वेत्ता है। अमृतसर आर्यसमाज के गत वार्षिकोत्सव में इसने विरोधी मतों की समीक्षा पर एक उत्तम व्याख्यान दिया। इसके प्रयत्न से कहूटा के लोगों ने आर्यसमाज स्थापित कर दी है। इसने मियानी पिण्डदादन-खाँ, मेरा आदि में अत्युत्तम व्याख्यान दिये; मजीठा में लाला गण्डामल असिस्टेन्ट इन्जिनियर को आर्य्यसमाज की सच्चाइयों पर विश्वास दिलाया और अब कश्मीर में धार्मिक शास्त्रार्थ के लिए जा रहा है।'' ऊपर के उद्धृत लेख से एक तो यह पता लगता है कि अपने निवास स्थान कहूटे में भी आर्य-समाज की स्थापना के यहाँ साधन बने थे, और दूसरे यह ज्ञात होता है कि इनके अर्थ-त्याग का सम्मान करना आर्य जाति ने आरम्भ कर दिया था। लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—''घर के जोगी जोगिना, आन गांव के सिद्ध।'' परन्तु ज्ञात होता है कि लेखराम उन थोड़े से आदमियों में से थे जिनका अपने ग्राम में भी मान होता है।

सं० १८८७ के आरम्भ में पण्डित लेखराम को 'आर्य्य गजट फीरोजपुर'' का सम्पादक बनाया गया। उस समय पंजाब के आर्य्यसमाजों के हाथ में अंग्रेजी के ''आर्य्य पत्रिका'' के अतिरिक्त अपने विचार तत्काल सर्वसाधारण तक पहुँचाने का एक मात्र साधन ''आर्य्य गजट'' नामी उर्दू का साप्ताहिक ही था। पण्डित लेखराम के प्रबल हाथों में आकर यह एक दम से चमक उठा। अनुमानतः दो वर्षों तक पण्डित लेखराम इस समाचार पत्र का सम्पादन करते रहे। उन दिनों के लेख पन्थाइयों के दिलों को हिला देने वाले निकला करते थे।

यद्यपि सम्पादकी बोझ उठाये हुए भी लेखराम जो आर्य्यसमाजों के जलसों पर जाते रहे और धर्म प्रचार करते रहे किन्तु एक स्थान में टिक जाने से प्रमाणों को ढूँढ़ कर हवाले देने और अपनी पुस्तकों को छपवाने की उनको बड़ी सुगमता मिल गई। इन्हीं दिनों ''तकजीब बुराहीन अहमदिया'' का प्रथम भाग छपा और ''नुसखा खब्त अहमदिया'' भी तय्यार हो गया। इसी अन्तर में दस बारह अन्य छोटी-छोटी पुस्तकें तय्यार हुईं और कुछ छप भी गईं, और अन्य बहुत-सी बड़ी पुस्तकों के लिये मसाला इकट्ठा होता रहा।

●

ऋषि जीवन का अन्वेषण

अब तक यद्यपि नाम "आर्य मुसाफिर" था परन्तु यात्रा की परिधि संकुचित सी ही थी। पञ्जाब से बाहर आर्य्य पथिक ने पाँव नहीं रक्खा था। तब यात्रा की परिधि में विस्तार के सामान पैदा होने लगे।

ऋषि दयानन्दका अन्त्येष्टि संस्कार हुए साढ़े चार वर्ष व्यतीत हो चुके थे। आर्य्य विभिन्न जनता की ओर से भी ऋषि के जीवन चरित्र की मांग पर मांग आ रही थी। टका सीधा करने वालों ने साधारण लेख छापकर ऋषि के जीवन को सन्दिग्ध बनाना भी आरम्भ कर दिया था। सांसारिक विभूतियों पर लात मारने वाले योगी को सिद्धियों का साधक बताना और मनुष्य पूजा की जड़ पर कुल्हाडी रखने वाले ईश्वर भक्त को पूज्य अवतार बतलाना आरम्भ हो गया था, और आर्य्य समाजियों के कानों पर जूं भी नहीं रेंगती थी। ऐसे समयमें मुलतान आर्य समाज ने अपने १२ अप्रैल, सं० १८८८ के अधिवेशन में सम्मति दी कि पण्डित लेखराम को स्वामी दयानन्द के जीवन-सम्बन्धी वृत्तांत इकट्ठा करनेके लिए नियत किया जाय। मुलतान आर्य्यसमाज का यह प्रस्ताव आर्य्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के १ जुलाई, सं० १८८८ के अधिवेशन में पेश हो कर स्वीकार हुआ। तब पण्डित लेखराम जी से इसके विषय में पत्र व्यवहार शुरू हुआ और नवम्बर, १८८८ में "आर्य्य गजट" के सम्पादन को छोड़ कर पण्डित लेखराम सचमुच आर्य्य मुसाफिर बन गये।

इस समय तक यद्यपि पण्डित लेखराम का नाम मैं सुन चुका था और अमृतसर के व्याख्यान का भी आनन्द ले चुका था, परन्तु अधिक परिचय

मेरा आर्य्य पथिक के साथ नहीं हुआ था। नवम्बर के मध्य में पण्डित लेखराम ऋषि जीवन सम्बन्धी घटनाओं का वृत्तान्त जमा करने निकले और लाहौर से कार्य्य आरम्भ किया। इस वर्ष के लाहौर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में पण्डित लेखराम ने २८ नवम्बर को, धर्म चर्चा के समय शङ्का-समाधान में बड़ा प्रसिद्ध भाग लिया, जिसके कारण उपदेशकों में उनका पद ऊँचा समझा जाने लगा। उसके पश्चात् १२ दिसम्बर की शाम को रेल से पण्डित लेखराम जी जालन्धर नगर में पधारे। १३ को प्रातःकाल मेरे साथ पण्डित जी का वार्त्तालाप होता रहा, जिससे हम दोनों एक दूसरे के अधिक समीप हुए। उसी सायंकाल पण्डित जी का "वेद ईश्वर ज्ञान" विषय पर, आर्य्य मन्दिर जालन्धर शहर में, व्याख्यान हुआ। मेरी "दैनिक वृत्तान्त पञ्जिका" में लिखा है, फिर पण्डित लेखराम का व्याख्यान सुनने गया। जन संख्या ५०० थी जिसमें सुशिक्षित सभ्य अधिक सम्मिलित थे। पंडित जी की स्मरण शक्ति आश्चर्यजनक है।

जालन्धर नगर से चल कर शायद मार्ग में एक दो स्थानों पर ठहरते हुए पंडित लेखराम सीधे मथुरा पहुँचे। वहाँ सारा दिसम्बर मास स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी के शिष्य-गण पंडित युगलकिशोर, पंडित दामोदर चौबे, पंडित हरिकृष्णादि से ऋषि दयानन्द और उनके गुरु सम्बन्धी वृत्तान्त पूछते और लिखते रहे।

सं० १८८९ के प्रथम भाग में पंडित लेखराम जी बराबर संयुक्त-प्रान्त में ही काम करते रहे। जहाँ ऋषि जीवन सम्बन्धी अन्वेषण के लिए पहुँचते वहाँ व्याख्यान भी अवश्य देते, और यह व्याख्यान वेदमत-मंडन तथा महम्मदी-मत-खण्डन में ही होते। मथुरादि से ऋषि जीवन का मसाला इकट्ठा करते हुए आर्य्य पथिक अजमेर पहुँचे। उस समय अजमेर नगर में बड़ा भारी भूचाल आया हुआ था। आर्य्य समाज की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति देख कर पौराणिकों, ईसाइयों, मुसलमानों और जीव-रक्षा का दम भरने वाले जैनियों तक ने विरोध का झन्डा खड़ा कर दिया था। इसका विशेष कारण यह भी था कि उन्हीं दिनों पंडित लेखरामकी "तकजीब" और "नुसखा खब्त" पढ़ कर अजमेर

का एक अब्दुलरहमान नामी व्यक्ति महम्मदी मत को तिलाञ्जलि देकर वैदिक धर्म की शरण में आया था। आर्य्य समाज की ओर से इसे सोमदत्त का सौम्य नाम दिया गया था। इससे मुसलमान बहुत ही दुःखित थे और इन्होंने ही पौराणिक मण्डल को उत्तेजना देकर पहले उनका उत्सव रचवाया। आर्य्य बेचारे छेड़छाड़ से किनारा किये बैठे थे कि पौराणिकों के दूत उनके घरों में पहुँच-पहुँच कर ललकारने लगे। वृद्धों ने तो इसकी कुछ परवा न की किन्तु १० वा १२ युवकों से न सहन हो सका और वे प्रश्नोत्तर के लिए पौराणिकों के निमन्त्रणानुसार पहुँच ही गये। जब प्रश्नोत्तर का समय आया और एक आर्य्य युवक ने पहला ही प्रश्न किया तो पौराणिक दल घबरा गया और कुछ बदमाशों ने शोर मचा कर, कि आर्य्यों ने एक मूर्त्ति को खण्डित कर दिया है, आर्य्यों पर लात, घूंसा और लाठी से आक्रमण कर दिया। इस समय सोमदत्त ने बड़ी बहादुरी दिखाई और पटेके हाथ से भीड़ को हटाता हुआ आर्य्य युवकों को बचा लाया।

जब इधर कुछ पेश न गई तो मुसलमानों की बारी आई। उन्होंने न केवल आर्य्य समाज के विरुद्ध खुले व्याख्यानों में ही आक्रमण शुरू किये बल्कि सहस्रों ने इकट्ठे हो कर यह धमकी दी कि यदि कोई आर्य्य बोला तो जान से मारा जायगा। "रहनुमा" नामी एक मासिक पत्र भी मुसलमानों ने उसी समय निकाला था।

यह समय था जब पंडित लेखराम अजमेर नगर में पधारे। पंडित लेखराम के पहुँचने पर आर्य्य पुरुषों को अपनी चिन्ता तो भूल गई, उल्टी इनकी रक्षा की चिन्ता जाग उठी। विचार किया गया कि पंडित जी की रक्षा के लिए चार पहरे वाले उनके पास रहें। जब धर्मवीर ने इस घुसफुस को सुना तो झिड़क कर कहा—"मुझे कोई जरूरत नहीं, तुम लोग बड़े डरपोक हो। कोई क्या कर सकता है ?" दूसरे दिन ही मुसलमानों की ओर से आदमी आने लगे जिनसे पंडित जी बराबर बातचीत करते रहे। व्याख्यानों की धूम मच गई। एक मौलवी ने पंडित जी से हिन्दी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। आर्य्यसमाजियों के गुप्त रीति से मना करने पर उनको झिड़क दिया

और मौलवी को पढ़ाने लग गये। अन्त को वहाँ के आर्य्यों से एक नया मासिक "वैदिक विजय पत्र" निकलवा कर उसकी सहायता अपने लेखों से करते रहे। जो "जिहाद" नामी प्रसिद्ध पुस्तक पंडित लेखराम की मिलती है वह पहले इसी "वैदिक विजय पत्र" में क्रमशः निकली थी।

इन्हीं दिनों अजमेर से बाहर भी राजपूताने के कुछ स्थानों में ऋषि जीवन सम्बन्धी अन्वेषण करते हुए नसीराबाद छावनी में पहुँचे। वहाँ मुहम्मदियों से शास्त्रार्थ छिड़ गया। शहर कोतवाल शराबी कायस्थ था, जिसने शास्त्रार्थ को मध्य में ही बन्द कर दिया। उसी रात शराबी कोतवाल को लकवा मार गया और दूसरे दिन वह मर गया। सर्व साधारण में प्रसिद्ध हो गया कि उस दुष्ट को पंडित जी का शास्त्रार्थ बन्द करने का फल मिला। अन्य उपदेशक शायद सर्व-साधारण के इस मिथ्या विश्वास से अनुचित लाभ उठाते किन्तु आर्य्य पथिक ने लोगों के इस भ्रम को दूर करने का बहुत ही प्रयत्न किया।

इसके पश्चात् पता लगता है कि पंडित जी छुट्टी लेकर अपने गृह पर आये। थोड़े दिनों ही घर पर ठहर कर भादों के आरम्भ में फिर अपने काम पर चले गये। २४ अगस्त सं० १८८९ के सद्धर्म्म-प्रचारक में छपा था— "पंडित लेखराम जी ने सवानह उमरी (जीवन चरित्र) का काम फिर शुरू कर दिया है। चन्द रोज हुए वह मेरठ की तरफ रवाना हुए। अब पहले मुमालिक मगरबी व शिमाली (पश्चिमोत्तर देश) में दौरा लगायेंगे।"

मालूम होता है कि मेरठ में आर्य्यपथिक बहुत दिनों तक ठहरे, क्योंकि "निवेद वेवगान" नामी पुस्तक मेरठ के रामचन्द्र वैश्य से छपवा कर माघ १९४६ के आरम्भ में ही सद्धर्म प्रचारक के कार्यालय में पहुँच गई थी। उस लघु पुस्तक की समालोचना मेरी लिखी हुई १ फरवरी, १८६० के सद्धर्म प्रचारक में छपी है। इस पुस्तक में शास्त्रीय प्रमाणों से भी विधवा विवाह का ही समर्थन किया गया था। इसीलिए मुझे पहले पहल उस समय यह सन्देह हुआ था कि आर्य्यपथिक नियोग को आपत्-काल का धर्म कदाचित् नहीं मानते हैं। समालोचना करते हुए मैंने लिखा था—"तर्जेतहरीर से वाजह होता है कि पंडित साहेब नियोग को वेदानुकूल नहीं मानते, बल्कि पुनर्विवाह

हर बेवा का जायज समझते हैं। हमारी राय में बेहतर हो अगर पंडित साहेब इस बहस को छेड़ें ताकि इस अमर मुतनाजिया का कुछ फैसला हो और आर्य्यसमाज एक खास नियम का पाबन्द हो जावे।'' इस विषय को इसी स्थान में समाप्त करने के लिए इतना लिखने की आवश्यकता है कि संवत् १९५० वि० तक पंडित लेखराम नियोग के विषय में कुछ संदिग्ध सी सम्मति रखते थे और प्रायः प्रसिद्ध आर्य्य समाजियों के साथ इस विषय में बातचीत करते रहते थे। जब संवत् १९५१ में मेरे साथ अधिक परिचय हुआ और खुली बात-चीत होने लगी उस समय मेरे साथ विचार करने पर ही उन्होंने इस विषय में अपनी सम्मति बदल ली थी और इसी लिए उन्होंने पादरी टी० विलियम्स और पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री (वर्त्तमान देवसमाजी गुरु) की शङ्काओं का समाधान करने के लिए, "मसला-नियोग" नामी ट्रैक्ट लिखा जो "कुलियात आर्य्य मुसाफिर" के २७९ पृष्ठ से आरम्भ होता है। मुझे भली प्रकार विदित है कि अपनी मृत्यु से एक वर्ष पहले वह द्विजों के लिए नियोग का ही विधान ठीक समझते थे, परन्तु शूद्रों के लिए पुनर्विवाह को ही शास्त्र सम्मत मानते थे। मेरठ से चल कर आर्य पथिक कौल (अलीगढ़) में पहुँचे। उपनगर बरौठा में उन्हीं दिनों आर्य समाज स्थापित हुआ था, वहाँ १९ जनवरी १८९० को व्याख्यान दिया जिसमें प्रायः राजपूत अधिक सम्मिलित हुए और आर्य्य समाज को २० नये सभासद मिले। फिर २१ और २२ जनवरी को खास अलीगढ़ में दो व्याख्यान देकर आगे चल दिये।

इसके पश्चात् आर्य्य पथिक संयुक्त प्रान्त और पंजाब के नगरों में सद्धर्म का प्रचार करते हुए ऋषि दयानन्द के जीवन सम्बन्धी घटनायें लिखते रहे, और भ्रमण करते हुए बीमार होकर अगस्त सं० १८९० के मध्य भाग में जालन्धर पहुँचे। यहाँ पहुँच कर उनको ज्वर बड़े जोर से चढ़ा। लाला देव-राज शान्ति सरोवर पर एकान्त में उनका डेरा कराया गया।

एक दिन कचहरी से ३ बजे ही लौट कर मैं पण्डित लेखराम जी को देखने चला गया। पण्डित जी चारपाई पर बैठे हाँप रहे थे और आँखों से ज्वर

१०५ दर्जे से बढ़ा हुआ मालूम होता था। मैंने नमस्ते की, उत्तर न मिला, मैंने पीठ के पीछे हाथ डाल कर लेटाना चाहा; मेरी बाँह जोर से झटक दी और क्रोध में भरे हुए बोले—"बस साहेब! मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा। यह आर्य्य गृह नहीं है।" मैंने पूछा—"पण्डित जी क्या हुआ?" क्रोध से रुक रुक कर बोले—"पहले लाला देवराज को बुलाओ। मैं पीठ पीछे बात करना पाप समझता हूँ" लाला देवराज जी के लिए आदमी दौड़ाया गया। वह शीघ्र ही पहुँच गये। धर्म वीर के होंठ फड़कने लगे और बोले—"आप काहे के आर्य हो इस तरह "ओ३म्" भगवान् की हतक कराते हो।" इतने में मैंने वहाँ नियत हुए भृत्य को अलग ले जा कर पूछा तो पता लगा कि मामला है क्या। पण्डित लेखराम ज्वर से पीड़ित होकर चारपाई पर पड़े "ओ३म्" "ओ३म्" बोल रहे थे कि एक जन्म के ब्राह्मण का लड़का वहाँ आ पहुँचा। चारपाई के सामने कुछ दूर गमले पड़े थे। तीन चार गमलों के ऊपर "ओ३म्" शब्द लिखा हुआ था। ब्राह्मण के लड़के ने जूता उतार कर कुछ गाली बक, गमले पर लिखे "ओ३म्" पर जूते लगाने शुरू किये, पण्डित जी से सहन न हुआ, दुष्ट की ओर लपके। लड़का भागा, पीछे स्वयं भी भागे। भला नटखट लड़के को ज्वर से पीड़ित लेखराम कैसे पकड़ सकते। जब वह आँखों से ओझल हो गया, तो हाँपते हुए लौटे और चारपाई पर बैठ गये।

मैंने लौट कर पण्डित जी को शान्त करना चाहा और कहा—"पण्डित जी भला देवराज जी का क्या अपराध है। उस शैतान को क्या इन्होंने बुलाया था!" उत्तर मिला—"क्यों नहीं गमले को ऊँची जगह पर रखा जहाँ लड़के का हाथ न पहुँच सकता। ईश्वर जानता है मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा।"

देवराज जी के नम्र उत्तर पर और भी बिगड़ने लगे तब मैंने उनको भेजकर पण्डित जी को लेटा दिया और मुट्ठी चापा करके सुलाया। यह घटना जहाँ आर्य्य पथिक की निर्बलता को प्रकट करती है, वहाँ साथ ही यह भी जतलाती है कि अपने सिद्धान्तों के लिए उनके हृदय में कैसी भक्ति थी।

दो सप्ताह तक पण्डित लेखराम ज्वर से पीड़ित रहे। ज्वर उतरते ही निर्बलता को सर्वथा भुलाकर उन्होंने २६ अगस्त १८७० के दिन पहला व्याख्यान

दिया। फिर ३१ अगस्त को दूसरा व्याख्यान सद्धर्म विषय पर स्थानीय आर्य्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में दिया। उसी समय नकोदार से समाचार आया कि वहाँ का गिरदावर कानूंगो, जो कुछ काल से महम्मदी हो गया था, अपने संशय निवृत्त करना चाहता है। दूसरे दिन ही पण्डित जी निर्बलता की परवाह न करते हुए, इक्के की सवारी से बहुत से आर्य्य भाइयों के सहित नकोदार पहुँचे। चार दिन बराबर धूमधाम से व्याख्यान होते रहे। एक साधु और एक पौराणिक पण्डित के साथ मूर्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ भी होता रहा, जिसमें दोनों निरुत्तर हो गये। अन्तिम दिवस २५ सभासद् बनाकर आर्य्य समाज स्थापित किया।

जालन्धर से लाहौर पहुँचकर आर्य्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान को मिले और फिर सीधे सहारनपुर पहुँचे। वहाँ से १२ सितम्बर को कानपुर में ऋषि जीवन सम्बन्धी अन्वेषण करते रहे और वहाँ बड़ी जन उपस्थिति में कई व्याख्यान दिये। सृष्टि उत्पत्ति विषय पर जो अन्तिम व्याख्यान था उसकी बहुत ही प्रशंसा हुई।

कानपुर से पण्डित लेखराम सीधे प्रयाग पहुँचे। प्रयाग में ही उन दिनों श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज का स्थापन किया हुआ वैदिक-यन्त्रालय भी था और पण्डित भीमसेन और पण्डित ज्वालादत्त भी उसमें काम करते थे। यहाँ पण्डित लेखराम एक मास तक पत्र व्यवहार देखते रहे। इसी समय कुछ प्रूफ देखते हुए आर्य्यपथिक को पण्डितों की पोपलीला का पता लगा; वेद भाष्य का एक छपा हुआ अङ्क जलवा दिया और उसका संशोधन करा कर फिर से छपवाया। अपने पाठकों के समझाने के लिए यह आवश्यक है कि वेदभाष्य का संस्कृत भाग ऋषि दयानन्द का अपना लिखवाया हुआ है। जिन पण्डितों ने मूल संस्कृत भाष्य में भी हस्तक्षेप करने से संकोच नहीं किया था वे भला भाषार्थ में कब चूकने वाले थे, जहाँ सारा काम ही उनके हाथों में था। यह पण्डित लेखराम के हलचल डालने का परिणाम था कि वेदभाष्य से अङ्कों के अवलोकन का भार कुछ प्रसिद्ध आर्य्य पुरुषों पर डाला गया।

मिर्जापुर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव का समाचार सुनकर पं० लेखराम २४

अक्तूबर१८६० ई० को उधर चल दिये। पहले दिन हवन के पश्चात् उसी विषय पर पण्डित लेखराम का युक्ति-युक्त, सारगर्भित व्याख्यान हुआ मेरे संवाद दाता लिखते हैं कि ऐसा जबरदस्त व्याख्यान मिर्जापुर निवासियों ने पहले कभी नहीं सुना था। उसी दिन शाम को धर्म विषय पर व्याख्यान हुआ। दूसरे दिन आर्य्य समाज के दश नियमों पर अपना प्रसिद्ध व्याख्यान दिया जिसको सुन कर बाल वृद्ध सभी आर्य्य समाज के गुण गाने लगे।

आर्य्य समाज के सभासद एक कलवार थे। पण्डित जी ने उन्हें समझाया कि जब वैश्य का काम करते हो तो यज्ञोपवीत से क्यों वंचित हो। सभासद् ने उत्तर दिया—"महाराज! मेरा यज्ञोपवीत कौन करायेगा?" वहाँ उत्तर में क्या देर थी। "मैं कराऊँगा; देखूँ कौन सा आर्य्यसमाजी पण्डित है जो सम्मिलित न होगा।" बस फिर क्या था। यज्ञोपवीत का समय नियत किया गया। न केवल नगर के प्रसिद्ध लोग ही सम्मिलित हुए प्रत्युत पण्डित घनश्याम और रामप्रकाशादि जन्म के ब्राह्मण पण्डितों ने स्वयं संस्कार कराया और धर्मवीर लेखराम के धैर्य देने पर बिरादरी आदि की धमकियों की कुछ भी परवाह न की।

मिर्जापुर के एक वकील बड़े कट्टर मौलवी थे और साथ ही शहर के गुण्डों के सरदार। मिर्जापुर अपने गुण्डों के लिए प्रसिद्ध है। काशी तो गुण्डों के लिए जगत विख्यात है, किन्तु मिर्जापुर का लोहा भी उसने माना हुआ है। काशी की कजरी का एक पद है।

"कासीजी में सोंटा चलेगा मिरजापुर तलवार"।

मिर्जापुर के गुण्डों के सरदार मौलवी वकील एक दिन पं० लेखराम के साथ मजहबी छेड़ छाड़ के लिये पहुँचे। भला आर्य्य मुसाफिर के सामने ठहरना कुछ हंसी ठट्ठा था? थोड़ी देर में निरुत्तर होकर चले गये। दूसरे दिन मुबाहसे की तय्यारी करके आये आर्य्य समाज के प्रधानादि ने उनकी नियत बद देख कर अस्वीकार किया, किन्तु धर्मवीर ने निर्भय होकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। शहर में हुल्लड़ मच गया। आर्य्य भाइयों ने पंडित

जी को बाहर जाने से मना किया किन्तु उन सबने सायंकाल को आश्चर्य के साथ देखा कि धर्मवीर अकेले डण्डा हाथ में लिये, पगडी का शमला छोड़े, घूमने जा रहे हैं।

मिर्जापुर से पडित लेखराम काशी को गये और मालूम होता है कि दो मास तक वहाँ ही आन्दोलन करते रहे। काशी के पंडितों के यहाँ आर्यपथिक ने बड़े चक्कर लगाये और पौराणिक पंडितों के विरोध का बराबर हाजिर जवाबी से मुकाबिला किया।

सं० १८६१ ई० के जनवरी मास में पंडित लेखराम काशी से चल दिये। दो दिन रास्ते में डुमरांव राज में निवास करके १७ जनवरी, १८६१ के दिन दानापुर पहुँचे।

१७ जनवरी से १२ फरवरी तक दानापुर, बाँकीपुर और पटना में ही काम किया। इन स्थानों में व्याख्यान भी हुए किन्तु बड़ी मनोरंजक वह वृत्तान्त-पत्रिका है, जो डाक्टर मुन्नीलाल शाह पटना आर्य्यसमाज के सामयिक प्रधान ने मेरे पास भेजी थी। यतः यह पत्रिका बहुत समाचार पत्रों तथा धर्म-वीर आर्य्य पथिक के जीवन वृत्तान्तों में छप चुकी है और यतः मुझे भी आगे चलकर इसमें लिखित विषयों पर अधिक प्रकाश डालना है, अतएव उस वृत्तान्त-पत्रिका को डाक्टर शाह के शब्दों में ही मुद्रित कर देता हूँ। डाक्टर शाह लिखते हैं :—

"जिन दिनों श्रीमान् पण्डित लेखराम जी श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवन-वृत्तान्त संग्रह करते हुए दानापुर से बांकीपुर पधारे थे और इस दीन पुरुष के निज गृह पर आ विराजे, उस समय यह पुरुष मेडिकल क्लास का विद्यार्थी और बाँकीपुर आर्य्यसमाज (बादशाही गञ्ज) का मन्त्री था। श्रीमान् पंडित जी बाँकीपुर में लगभग ६ दिन के ठहरे, इस बीच उनके मकान से एक तड़ित-समाचार समाज के नाम अनायास पहुँचा। तार द्वारा समाज से जिज्ञासा की गई थी कि पंडित जी जीवित हैं या नहीं? किसी दुर्जन यवन ने खबर भेजी थी कि पंडित लेखराम मारे गये !!

"इस अपूर्व घटना का कारण मैंने पण्डित जी से पूछा। पण्डित जी ने उत्तर में यही कहा कि प्रायः यवन लोग ऐसा ही अमङ्गल समाचार भेजा करते हैं। अस्तु, तार का जवाब, श्रीमान् पंडित जी के जीवित रहने का, उसी क्षण भेजा गया परन्तु मुझ को उस दिन से यवनों के कुटिल वर्त्ताव का अशुभ ख्याल खटकने लगा। दूसरे दिन, पण्डित जी ने मुझको अधिक चिन्तित और उदासीन पाकर पूछा कि आप आज मलिन देख पड़ते हैं। उत्तर में मैंने यही निवेदन किया कि महाराज ! ऐसा न हो कि किसी समय में आपके ऊपर यवनों का आघात पहुँच जावे ! आपको उचित है कि इस असभ्य मूर्ख कोम के लोगों से सोच विचार के वर्त्ताव रखना। पंडित जी हँस कर कहने लगे 'मन्त्री जी ! मृत्यु एक दिन अवश्य ही है किन्तु सच्चे धर्म्म के लिए शहीद होने के बराबर कोई दूसरी मृत्यु नहीं—तवारीख पढ़ो और देखो कि इस जमाने के पर्दे पर जिन-जिन लोगों ने अपने धर्म के लिए गला दिया है, उस कर्म्म का कैसा प्रभावशाली उत्तम परिणाम निकला है—बस, इन यवनों के विषय में अधिक उद्विग्न होने की कोई आवश्यकता नहीं—ऐसे तो ये लोग मुझको गालियां देते, पत्थर फेंकते, हमारी तसनीफ की हुई किताबें जलवाते, जगह-ब-जगह यवन मत के पोल, इन दो किताबों (तकजीब-बुरा-हीन अहमदिया वा नुसखे-खब्त-अहमदिया) के द्वारा खुल जाने से अभियोग खड़ा करवाने और नाना प्रकार के कुटिल वर्त्ताव बराबर उत्पन्न करने की कुचेष्टा किया करते हैं परन्तु मैं इन पर कुछ ध्यान नहीं देता। हम लोगों को उचित है कि अपना कर्त्तव्य कर्म पालन करने में किसी प्रकार की त्रुटि न दिखलावें।

मैंने पुनः पूछा पण्डित जी सत्यार्थ-प्रकाश का फारसी अनुवाद क्यों नहीं करते ?

उत्तर में पण्डित जी ने यह कहा—सोच तो रहा हूँ कि स्वामी जी महाराज का जीवन चरित्र समाप्त कर सत्यार्थ-प्रकाश का फारसी तर्जुमा कर यवन लोगों के मुख्य प्रदेशों की ओर प्रस्थान करूँ।

मैंने पुनः पूछा कि मुख्य प्रदेशों से आपका क्या अभिप्राय है ?

पंडित जी ने जवाब दिया कि अफगानिस्तान, परशिया, अरेबिया, मिश्र,

तुर्किस्तानादि देशों में भ्रमण कर वैदिक-धर्म्म का प्रचार करना ही हमारा मुख्य अभिप्राय है।

मैंने पूछा—"क्यों पण्डित जी ! बिना प्रतिनिधि की आज्ञा आप कैसे जायेंगे ?"

मन्त्री जी मैं प्रतिनिधि के आधीन हो कर जाने की इच्छा नहीं करता, वरन् स्वतन्त्रता के साथ उपदेश करना चाहता हूँ ?"

"पण्डित जी ! इन यवन देशों में आप बिना प्रतिनिधि की सहायता के अपनी आजीविका किस प्रकार करेंगे ?"

"मन्त्री जी ! मैं चिकित्सा द्वारा अपनी जीवन-वृत्ति धारण करूंगा।"

"पंडित जी ! क्या आपने इसमें कुछ परिश्रम किया है ?"

"मन्त्री जी ! कुछ तो किया है और शनैः शनैः कर रहा हूँ। देखो हमारे पास बहुत से मुफीद नुसख जमा हैं। जब मैं एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता हूँ तो चिकित्सा शास्त्र के जानने वालों से प्रायः मुलाकात किया करता हूँ और जो-जो मुफ़ीद नुसख उनके पास होते हैं चन्द उनमें से नोट कर लेता हूँ।"

इसी अवसर में पंडित जी ने नोट बुक निकाल कर मुझको भी (प्रार्थना करने पर) दो चार नुसखें धातु आदि के विषय में लिखवा दिये।

"पंडित जी ! कल दिन एक सनातनी पौराणिक के यहाँ जलसा है, इसमें अनेक पंडितगण दूर-दूर देश से आये हैं उन्होंने मुझको सूचना भेजी आप भी अपने पंडित के सहित आइये सो इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ? श्रीमान् पडित जी ने उत्तर दिया कि अवश्य चलना चाहिए—तदनुसार हम लोग दूसरे दिन पौराणिकों के जलसे में शरीक हुए। पंडित जी का एक व्याख्यान अवतारादि कल्पित विषय के खडन पर ऐसा प्रभावशाली उत्तमता से हुआ कि पौराणिकों को चकाचौंध लग गया, उनमें से कोई निरक्षर लंठ कषाय वस्त्रधारी स्वामी दयानन्द के विरुद्ध अण्ड-बण्ड बकने लगा

पर पंडित जी ने थोड़े ही समय में उसका मुंह बन्द कर दिया। तत्पश्चात् सन्ध्या को हम लोग अपने स्थान पर लौट आये।

"प्रतिदिन स्वर्गवासी पंडित लेखराम जी से धर्म्म सम्बन्धी विषयों के ऊपर बात-चीत होते-होते एक दिन उन्होंने पूछा कि मन्त्री जी! ४० चालास पारे का कुरान आपने देखा वा नहीं? मैंने उत्तर दिया नहीं। पंडित जी कहने लगे कि मैं इस पुस्तक की खोज में बहुत दिनों से हूँ पर अद्यावधि प्राप्त नहीं हुई। मैंने उनसे निवेदन किया कि इस स्थान पर एक वृहत् कुतुबखाना (Library) मौलवी खुदाबक्श खाँ बहादुर का है। इस कुतुबख़ाने के बराबर कोई दूसरी इधर-उधर नहीं है; प्रायः पुस्तकें उनके नबियों के और अरब मुल्क के प्राचीन मौलानों के तसनीफ किये हुए हैं; सो इसको आप चल के मुलाहिजा कीजिये शायद वह किताब मिल जाय। पण्डित जी समाचार सुनते ही बड़ी प्रसन्नता और हर्ष पूर्वक उसी समय मुझ को लेकर कुतुबख़ाने को आये और किताबें देखना आरम्भ किया; ईश्वर की कृपा से वही ४० पारे का कुरान जिसकी खोज में इतने दिनों से इच्छुक हो रहे थे, प्राप्त भया। पंडित जी ने प्रायः यह मुख्य-मुख्य विषयों को पिछले १० पारों में से नोट कर लिया और भी बहुत-सी बातें अपनी डेली डायरी (रोजनामचे) में दर्ज कीं। इस कार्य्यवाही को देख कर चन्द यवन लोगों ने जो वहाँ बैठे थे पण्डित जी का नाम व तारीफ मुझ से पूछा पर मैंने किसी कारण वश नाम नहीं बतलाया। इसी क्षण में कुतुबख़ाने के मालिक भी पहुँच गये। उन्होंने अपने मौलवियों से सुना कि अमुक पंडित ने कुरान के (४० पारे) से बहुत से विषय नोट किये। मालिक कुतुबखाना उस ३० पारे के कुरान के विषय में यों कहने लगे कि यह किताब बड़े कठिनता से प्राप्त भया है, अर्थात् जब वह पेशावर गये थे तब एक प्रतिष्ठित मौलवी ने कई सहस्र रुपये लेकर बेचा था। उन मौलवी ने मालिक कुतुबखाने से यों बयान किया था कि यह कुरान परशिया (ईरान) के बादशाह के दीवान ने अफ़गानिस्तान (काबुल) में भेजा था, उस आदमी से मुझ को प्राप्त हुआ। अस्तु, पण्डित जी से और भी बातें होने लगीं, पण्डित जी कार्य्य समाप्त होने पर अधिक न ठहरे और हम लोग अपने डेरे पर बातचीत करते हुए लौट आये।

"दूसरे दिन हम लोग खड़गविलास नामक यन्त्रालय में पहुँचे। समाचार मिला था कि उस प्रेस में "कवि-वचन-सुधा" का, जिसको बाबू हरिश्चन्द्र काशी से प्रकाशित करते थे, पूरा-पूरा फाइल है? सुतरां पंडित जी ने फाइल को मांगा और उन लोगों ने भी कृपया दे दिया। पण्डित जी को जो कुछ नोट करना था सो सब लिख लिए; इस पत्र में स्वामी जी के विषय में अनेक उत्तम-उत्तम विषय प्रकाशित हुए थे, हुगली शास्त्रार्थ इसी पत्र में प्रथम-प्रथम ज्यों का त्यों छपा था।

"स्वामी जी का भ्रमण वृत्तान्त जब पण्डित जी पटने का संग्रह कर चुके, तब कलकत्ता प्रस्थान करने की तय्यारी की। जब तक पण्डित जी यहाँ ठहरे तब तक सभासदों को पूर्णरूप से उत्साह देते रहे। आपके कई व्याख्यान पब्लिक में हुए जिनका असर बहुत ही लाभकारी हुआ। पंडित जी जब कोई ऐसी बात सुनते थे जो उनकी आत्मा को प्रिय न होती थी तो उस पुरुष से बहुत शीघ्र रंज हो जाते थे परन्तु साथ ही यह रंज बहुत क्षणिक रहता था। कलकत्ता में बराबर पंडित जी के साथ रहा और बहुत-सी शिक्षा उनसे प्राप्त की—आपको तवारीख का बड़ा शौक था, अतएव बहुत से विषय का विस्तृत ज्ञान आप हासिल किये हुए थे।"

१३ फरवरी सं० १८९१ के दिन आर्य्यपथिक बांकीपुर से हावड़ा जाने वाली गाड़ी में सवार हुए और १४ फरवरी को कलकत्ते पहुँच कर आर्य्यावर्त्त समाचार पत्र के कार्य्यालय में डेरा किया।

इसी वर्ष १२ अप्रैल को हरद्वार के कुम्भ का नहान और एक मास पहले ही बड़ा भारी मेला लगने वाला था। ऋषि दयानन्द के परलोक गमन के पश्चात् यह पहला ही कुम्भ था और मैंने इस अवसर पर प्रचार के लिए बड़ा बल दिया था। मेरे लेखों को कलकत्ते में पढ़कर आर्य्यपथिक को भी बहुत जोश आया। उन्होंने ७ मार्च, १८९१ के आर्य्यावर्त्त में मेरे लेख के साथ सर्वथा सहमत होकर मुझे आज्ञा दी कि उनके हिसाब में से ५) आर्य्यसमाज जालन्धर के कोषाध्यक्ष से लेकर कुम्भ प्रचार फण्ड में दाखिल कर दूं। पण्डित लेखराम के लेख पर पञ्जाब और सयुक्त-प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभाएँ

भी जाग उठीं और मुझे आज्ञा हुई कि प्रचार का प्रबन्ध करने के लिये हरद्वार चला जाऊँ। मेरे हरद्वार पहुँचने के तीन दिनों के पश्चात् ही पण्डित लेखराम जी भी कलकत्ते से ५०) चन्दा करके साथ लिए हुए पहुँच गए थे और जब कार्यवशात् मुझे प्रचार के बीच में से ही जालन्धर लौटना पड़ा तो मेरे निवेदन पर पण्डित जी ने राजकुमार जनमेजय को प्रबन्ध के काम में बड़ी सहायता दी थी। पण्डित जी इससे पहले मुझे साधारण परिचित आदमियों में समझा करते थे, परन्तु कुम्भ प्रचार के लिए मेरी अपीलों को पढ़कर वह मुझसे अधिक प्रेम करने लग गए थे। वह ऋषि दयानन्द के बड़े भक्त थे और ऋषि के चरणों में मेरी भक्ति देख कर ही आर्य्यपथिक मेरे अधिकतर समीप हो गए।

कुम्भ प्रचार समिति पर पं० लेखराम मेरे पास जालन्धर आये और आर्य प्रतिनिधि सभा की आज्ञानुसार कुम्भ प्रचार का हाल एक उर्दू ट्रैक्ट की शकल में छपवाया।

लाहौर में पहुँचते ही समाचार मिला कि सिन्ध हैदराबाद में आर्य्यजाति के कुछ भूषण महम्मदी तथा ईसाई मतों की ओर झुक रहे हैं। इस पर आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के प्रधान की आज्ञा पाकर पं० लेखराम ने उधर को प्रस्थान किया।

सक्खर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए पण्डित लेखराम वैशाख १९४८ के अन्त में चले गए। स्वामी (वर्त्तमान पण्डित) पूर्णानन्द जी भी "द्वाबा गुरुदासपुर उपदेशक मंडली" की ओर से उक्त उत्सव में सम्मिलित थे। वहाँ विस्तृत समाचार मिला कि महम्मदी मत का (सिन्ध) हैदराबाद में जोर है और साथ ही यह भी पता लगा कि एक आमिल रईस अपने दो लड़कों सहित महम्मदी मत स्वीकार करने को तैयार है। इससे बढ़कर यह प्रसिद्ध था कि कई युवक ईसाई मत की ओर अधिक झुक रहे हैं।

आर्य्यपथिक यह समाचार सुनकर चुपके से कैसे लौट सकते थे? श्री पूर्णानन्द जी सिन्धी भाषा जानते थे, इसलिए उन्हें साथ लेकर पं० लेखराम ने हैदराबाद का रास्ता पकड़ा। ज्येष्ठ, १९४८ के आरम्भ में ही ईसाई और

महम्मदी मतों के खण्डन की हैदराबाद में धूम मच गई। ईसाई मत से युवकों को हिलाने के लिए आर्यपथिक ने उसी स्थान में एक लघु पुस्तक तैयार की जिसका शीर्षक रक्खा—"क्या आदम और हव्वा हमारे वालदैन (माता-पिता) थे ? इस लेख में युक्ति तथा प्रमाण द्वारा सिद्ध किया कि एक माँ-बाप की सन्तान सारी मनुष्य सृष्टि सिद्ध नहीं होती। इसी प्रबल लेख का सार अपने व्याख्यान में देकर पण्डित लेखराम ने ८ वा १० आर्य्य जाति के युवकों को ईसाई मत के गढ़े से गिरते-गिरते खींच लिया।

सिन्धी रईस, जो महम्मदी मत की ओर झुक रहे थे। दीवान सूर्यमल जी थे। आर्य्यपथिक के हैदराबाद पहुँचने पर वह स्वयं तो अपने इलाके अलीपुर की ओर चले गए, किन्तु उनके दोनों पुत्रों को पण्डित लेखराम ने जा घेरा। मेरे पास उस समय का सारा पत्र व्यवहार मौजूद है जिससे पण्डित जी की हिम्मत और उनके धर्मरक्षा में उत्साह का पता लगता है। हैदराबाद पहुँचते ही हमारे धर्मवीर दीवान सूर्यमल के पुत्रों के पास गये। बड़े का नाम दीवान मेवाराम था। ये युवक पण्डित लेखराम को टालना चाहते थे; किन्तु लेखराम भला कोई टलने वाले आसामी थे ? दूसरी, तीसरी, चौथी बार फिर गये और आग्रह किया कि जिस मौलवी पर उन्हें पूर्ण विश्वास हो उसके साथ मुबाहसा कराके सत्या-सत्य का निर्णय करलें। फिर पत्रों की भरमार कर दी। तब मजबूर होकर मौलवियों को सामने आना पड़ा। मौलवी सय्यद महम्मद-अली-शाह के साथ सबसे पहला मुबाहसा हुआ। विवादास्पद विषय यह था कि महम्मद साहब के पास मोजजे (करामात) थे वा नहीं। मौलवी साहब तङ्ग आ गये और कुछ उत्तर न दे सके। तब दूसरे मौलवियों ने पत्र व्यवहार शुरू किया। मौलवी महम्मदसद्दीक, हाजी सय्यद-गुलाम-महम्मद, मुफतीसय्यद फाजिलशाह, सय्यद हैदरअलीशाह—इन चार महाशयों की ओर से उर्दू के पत्रों के उत्तर फारसी भाषा में दिये। इस पत्र व्यवहार के पढ़ने से पण्डित लेखराम की योग्यता का बड़ा उत्तम प्रमाण मिलता है। इस बड़े प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि दीवान सूर्यमल के दोनों पुत्रों को महम्मदी मत से घृणा हो गई और एक कुलीन आर्य्य परिवार की रक्षा का भार आर्य्यपथिक को प्राप्त हुआ। यह जानना इस स्थान में मनोरञ्जक होगा, कि प्रसिद्ध ब्राह्मसमाजी

वक्ता श्री प्रिन्सिपल वासवानी एम० ए० उन दिनों हैदराबाद में विद्यार्थी थे और उनके दिल में अपने धर्मशास्त्रों का गौरव पण्डित लेखराम से बात-चीत करने और व्याख्यान सुनने से बैठा था।

लाडकाना के कुछ बलात्कार से मुसलमान किये हुओं का प्रार्थना-पत्र पण्डित जी के पास हैदराबाद में ही पहुँचा था। उन लोगों ने शुद्ध होकर आर्य्यसमाज में प्रविष्ट होने की प्रार्थना की थी। बीमार हो जाने के कारण उस समय पण्डित लेखराम उनकी प्रार्थना को स्वीकार न कर सके। परन्तु लेखराम का शुभ सङ्कल्प फिर फलीभूत हुआ और अनेक कष्ट सहन करके उन में सैकड़ों भाई वैदिक-धर्म की शरण में आकर परमार्थ-रूपी धन को सञ्चय कर रहे हैं। हैदराबाद (सिन्ध) में ही पण्डित लेखराम ने "क्रिश्चियन मत दर्पण" की तय्यारी शुरू कर दी थी और सृष्टि उत्पत्ति तथा उसके इतिहास पर जो गवेषणापूर्वक व्याख्यान उक्त पण्डित जी दिया करते थे उस सबका विस्तार पूर्वक वर्णन "तारीख-ए-दुनिया" नामी ट्रैक्टरूप में उन्हीं दिनों तय्यार किया गया था। सितम्बर (१८६/ ई०) मास में पिछला ट्रैक्ट छप चुका था, जिसकी समालोचना २९ भाद्रपद, सं० १९४८ के 'प्रचारक' में प्रकाशित हुई थी।

मालूम होता है कि सिन्ध हैदराबाद से लौट कर पण्डित लेखराम अधिकतर पञ्जाब में ही काम करते रहे। मान्ट-गुमरी आदि समाजों में व्याख्यान देकर लाहौर पहुँचे और वहाँ पौराणिक मतखण्डन के व्याख्यानों की झड़ी लगा दी। फिर ११ अक्तूबर को अमृतसर आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव के समय "आर्य्य-धर्म" पर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा सारगर्भित व्याख्यान दिया। इसी व्याख्यान की प्रशंसा सद्धर्म-प्रचारक में करते हुए मैंने देशभाषा के शार्टहैंड की आवश्यकता जतलाई थी।

नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में पण्डित लेखराम लाहौर आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित रहे जहाँ २९ नवम्बर को अन्तिम व्याख्यान उनका हुआ। उसमें उन्होंने सारे संसार के मतों का मुकाबिला करके सिद्ध किया कि

केवल वैदिक-धर्म ही मनुष्यों को शान्ति दे सकता है।

दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में साधु केशवानन्द उदासी के शोर मचाने पर पण्डित लेखराम जी को तार देकर आर्य्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री जी ने बुलाया और नाहन राज में भेजा। साधु केशवानन्द के साथ महाराजा साहब के सामने बातचीत भी हुई और फिर आर्यपथिक के चार व्याख्यान हुए जिसके पश्चात् नाहन में आर्यसमाज की स्थापना हुई।

राजपूताना के साथ विशेष सम्बन्ध

ऐसा मालूम होता है कि नाहन के शास्त्रार्थ और वहाँ आर्य्य समाज स्थापित करने के पश्चात् पंडित लेखराम कुछ दिन और पंजाब में काम करते रहे क्योंकि २१ मार्च, १८९२ को उन्होंने मियानी (जिला शाहपुर) में नवीन समाज स्थापित किया था, और फिर राजपूताने की ओर चले गये। पहली बार जो सम्बन्ध बाबू रामविलास शारदा जी तथा अजमेर के अन्य आर्य पुरुषों से हुआ था वह इस बार अधिक दृढ़ किया। विशेषत: स्वर्गवासी बजीरचन्द्र जी के वहाँ होने से आर्यपथिक को उस प्रान्त से बड़ा प्रेम हो गया था। इस बार (जून१८९२ ई०) तब पंडित लेखराम बराबर राजपूताने में ही ऋषि जीवन की घटनाओं का पता लगाते रहे ! राजपूताने के सर्व प्रसिद्ध रईसों, ठाकुरों और प्रतिष्ठित पुरुषों से मिलकर जो वृत्तान्त आर्यपथिक ने लिखा था वह सब जीवन-चरित्र में छप चुका है।

इन दिनों की दो घटना पंडित जी के स्वभाव को दो अंशों में स्पष्टता से प्रकट करती हैं। बूँदी राज्य में जाकर ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने शास्त्रार्थ की धूम मचा दी थी। आर्य पुरुषों को जब यह पता लगा तो उन्होंने दोनों संन्यासी महात्माओं की सहायता के लिए आर्य-पथिक को भेजा। कुछ लोगों ने डराया भी कि रियासत का मामला है, कहीं कष्ट न मिले; परन्तु धर्म-युद्ध का नरसिंहा जब बज गया तो लेखराम को रोकने वाली कोई भी शक्ति नहीं थी। अकेले सिंह की न्याईं सीधे बूंदी में पहुँचे। वहाँ जाकर पता लगा कि महाराज साहेब के विशेष शास्त्रार्थ से इनकार कर देने पर दोनों संन्यासी महात्मा लौट गये हैं। पंडित लेखराम भी

जहाजपुर में लौट आये, जहाँ सायंकाल को पहुँचते ही इन के व्याख्यान का विज्ञापन जहाजपुर के हाकीम ने (जो आर्य्यसामाजिक थे) घुमा दिया। रात को व्याख्यान में सर्वसाधारण के साथ फौज के सिपाही और अफसर भी आये; उनमें से पैदल का सूबेदार मुसलमान था। आर्यपथिक ने अन्य विषयों के साथ महम्मदी मत का भी कुछ खड़ा खण्डन किया। इस पर मुसलमान सूबेदार ने दिल्लगी में कहा—"ऐसे ही तीस-मारखां थे तो बूंदी से क्यों भाग आये।" हाजिर जवाब लेखराम को सोचने की जरूरत न थी; उत्तर दिया—"विपक्षी, शास्त्रार्थ से भाग गया और हम लौट आये; कुछ आं हजरत (अर्थात् महम्मद साहब) की तरह हिजरत करके (भाग कर) तो नहीं आये" इस पर मुसलमान सूबेदार की आंखें लाल हो गईं और उसने तलवार के कब्जे पर हाथ रक्खा। वीर लेखराम ने गरजते हुए कहा—"मुझे तलवार की धमकी दिखाता है; अगर है पठान का तो तलवार निकाल कर मजा देख।" हाकिम ने मुसलमान सूबेदार को अलग बैठा दिया और फिर किसी ने चूँ तक न की।

अजमेर के सम्बन्ध में यहाँ बाबू रामविलास शारदा जी के पत्रों से कुछ भाग उद्धृत करता हूँ जिस से आर्यपथिक के स्वभाव और काम पर बड़ा प्रकाश पड़ता है :—

"स्वामी दयानन्द सरस्वती को छोड़कर, जिनके विषय में कुछ नहीं जानता क्योंकि मैं उन दिनों कालेज में पढ़ता था और आर्य्यसमाज का सभासद नहीं था, मैंने जितने संन्यासी तथा उपदेशक देखे हैं ऐसा सच्चा दृढ़ मोहकिक, निर्लोभी, परिश्रमी, जितेन्द्रिय, अपने समय को व्यर्थ न खोने वाला एक भी मनुष्य नहीं देखा। व्याख्यान देने तथा लोगों की शङ्का समाधान करने के अलावा जो समय उनको मिलता था वह प्रायः पुस्तक देखने तथा वैदिक-धर्म के विरोधियों को उत्तर देने में लगाया करते थे।

"आर्यसमाजों की अन्दरूनी हालत पर निहायत अफसोस किया करते थे कि तुम्हारे लोगों में पोप घुसे हुए हैं जो मौका पाकर समाजों का सत्यानाश कर डालेंगे और वे पं० भीमसेन का नाम अकसर इस सिलसिले में लिया करते थे और उनकी हेर-फेर वाली इबारत पर अकसर अत्यन्त क्रोधित होते

थे। लोग इस विषय में पंडित जी को कट्टर बतला कर टाल दिया करते थे परन्तु जो लोग उनसे भले प्रकार विज्ञ थे वे जानते थे कि धर्मवीर आर्य्यपथिक का एक एक शब्द ठीक था। पंडित जी से देश-सुधार व वैदिक-धर्म के प्रचार के विषय पर जब जब बातें होतीं तो आप फरमाया करते थे कि आर्यावर्त्त का उद्धार उस समय तक नहीं होगा जब तक कि लोग वेदों पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं करेंगे। नवीन वेदान्तियों व अन्य लोगों की दूरदर्शिता से यह ख्याल आम तौर से फैल रहा है कि उपनिषद् वेदों से आला है। भोले लोग यह नहीं जानते कि यह वेदों से ही निकले हैं। कई तो उनके सूक्त के सूक्त ही हैं। मेरा विचार उपनिषदों का तरजुमा करने का है जिसकी भूमिका में यह सब मसले हल करूँगा। और लोगों के दिलों में वेदों की बुजुर्गी बिठलाने का यत्न करूँगा शोक यह है कि पंडित जी के दिल की दिल ही में रही।

"इस बात का विचार मुद्दत से था कि आर्य्य पुरुषों के पढ़ने योग्य पोप-लीला से रहित निर्भ्रान्त मनु-भाषा-टीका छपवाई जावे। मैंने इस विचार को पंडित जी के सामने पेश किया तो आपने इसका भाषान्तर करना मंजूर किया; आप फरमाते थे कि मैंने २६ मनुस्मृतियाँ इकट्ठी की हैं और जो कश्मीर से मनुस्मृति हाथ लगी है वह बहुत नायाब। आप पंडित गुरुदत्त जी के नोटों के विषय में भी कहते थे और फरमाते थे कि श्रीमान् शाहपुराधीशों ने भी, जिन्होंने तीन महीने तक मनुस्मृति को श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी से पढ़ा, था बहुत कुछ बाते बतलाई हैं। छपाई आदि के विषयमें सब शर्तें निश्चित होने पर आपने कार्य आरम्भ कर दिया था और एक अध्याय का भाषान्तर भी कर दिया था जो उनके कागजों में मौजूद है और मेरे नाम से एक विज्ञापन भी लिख रक्खा था। इसके पश्चात् मैंने अपने शास्त्रोद्धार की स्कीम पेश की जिसमें वेदों, उपनिषदों, छः शास्त्रों का उपनिषद् भाषान्तर और महाभारत और वाल्मीकि रामायण के सार व सूर्य सिद्धान्त, चरक, सुश्रुत आदि का छपवाना, बाद निकालन परिक्षिप्त श्लोकों के, किया। आपने फरमाया कि मनुभाष्य के पश्चात् वे वाल्मीकीय रामायण को लेवेंगे जिसके लिए उन्होंने मसाला तैयार कर रक्खा था। आपका विचार एक प्राचीन इतिहास लिखने का भी था और अंग्रेजी की Nineteenth Century के मुआफिक एक

मासिक रिसाला निकालने का इरादा रखते थे जिसमें आर्यावर्त के सब विद्वान् आर्य्य भ्राता मज़मून भेजा करें। अजमेर से भी दो एक नाम आपने लिखे थे। आपने यहाँ स्वामी जी के जीवन चरित्र के मुतालिक बहुत दिनों तक काम किया था और यहाँ के मशहूर हकीम पीर जी से थोड़ा सा मुबाहसा भी हुआ था जो कि पीछे इनकी बड़ी तारीफ किया करते थे। आप पादरी ग्रे, मौलवी मुरादअली, पंडित शिवनरायण जी शास्त्री आदि बहुत से लोगों से मिले थे जिसका पूरा-पूरा हाल स्वामी जी के जीवन चरित्र के लेखों से मिल रहा है। आपके अजमेर में कम से कम १५ व्याख्यान हुए होंगे जिनमें बावजूद लस्सानिय (Oratory) न होने के लोग बहुत संख्या में जमा होते थे और बहुत ही सन्तुष्ट होकर घर को जाते थे। इतिहास व प्राचीन तहकीकात से भरे हुए ऐसे व्याख्यान लोगों ने कभी न सुने और अब तक तारीफ करते हैं।"

इन्हीं दिनों पंडित लेखराम जी ने "वैदिक विजय पत्र" से जिहाद विषयक लेखों को इकट्ठा करके "रिसाला जिहाद" छपवाया था क्योंकि उसकी समालोचना १४ मई, १८९२ के सद्धर्म-प्रचारक में निकली थी।

ऐसा मालूम होता है कि पण्डित लेखराम जून के अन्तिम सप्ताह वा जुलाई के आरम्भ में फिर राजपूताने से लौट आये थे क्योंकि उनके लिखे हुए "कस्तूरी की प्राप्ति" विषयक दो लेख १३ जुलाई और २७ अगस्त के प्रचारक में दर्ज हुए हैं। पहला लेख भेजते समय पंडित लेखराम जी लाहौर में थे और दूसरा लेख उन्होंने मुजफ्फरगढ़ आर्य्यसमाज से भेजा था। २३ जुलाई १८९२ के प्रचारक में बखशी सोहनलाल (वर्त्तमान आनरेबल तथा रायबहादुर) के मांस भक्षण समर्थक लेखों का उत्तर भी आर्य्यपथिक का लाहौर से भेजा हुआ ही छपा है। फिर ३ और १० सितम्बर के प्रचारक में वृक्षों में जीव सम्बन्धी विचारपूर्ण दो लेख पण्डित लेखराम के लहिय्या (जिला डेरा इस्माइलखां) से भेजे हुए छपे है। मालूम होता है कि डेराजात के जिलों में धर्मप्रचार करने के पश्चात् पण्डित लेखराम सीबी (बिलोचिस्तान) में स्वामी नित्यानन्द सरस्वती जी सहित पण्डित प्रीतम शर्मा पौराणिक के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए गये थे क्योंकि उनका वहाँ २२ जुलाई १८९२ को पहुँचना प्रचारक में छपा है।

प्रीतमदेव ने तो शास्त्रार्थ से पीछा छुड़ाना चाहा किन्तु उसी शाम को उससे १०० गज की दूरी पर पण्डित लेखराम का सिंहनाद सुनाई देने लग गया। पण्डित प्रीतम शर्मा ने तो स्वामी नित्यानन्द जी के सामने आकर शास्त्रार्थ को क्वेटे के लिए मुलतवी किया और २४ जुलाई को चल दिया; परन्तु पण्डित लेखराम जी चार-पाँच दिनों तक स्वामी नित्यानन्द जी के साथ सीबी में ही व्याख्यान देते रहे। फिर क्वेटे से होते हुए ११ सितम्बर को कसूर (जि० लाहौर) आर्य्यसमाज में जाकर एक व्याख्यान दिया। २८, २९ सितम्बर को हम पण्डित लेखराम को अमृतसर आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं। अक्तूबर मास के आरम्भ में पण्डित लेखराम जी जालन्धर पहुँचे। उन दिनों छावनी में जाटों का रिसाला नम्बर १४ था जिसका अधिक भाग आर्य्यसमाजी था। पण्डित लेखराम जी का एक व्याख्यान सदर बाजार में हुआ और फिर दो व्याख्यान चौदहवें रिसाले में हुए, वह दृश्य भूलने योग्य नहीं, क्योंकि मैंने भी आर्य्यपथिक के साथ-साथ वहीं व्याख्यान दिए थे। रिसाले का अपना बड़ा शामियाना लगाकर मण्डप खूब सजाया गया। छावनी के तीन-चार सौ श्रोताओं के मध्य चार-पाँच सौ सवार बर्दी पहन कर अपने सरदारों सहित उपस्थित रहते थे। अंग्रेज आफिसर भी दोनों दिन व्याख्यानों में आते रहे और व्याख्यान सुनकर बड़े प्रसन्न होते रहे।

जालन्धर से पण्डित लेखराम पोठोहार (पञ्जाब प्रान्त) में प्रचार के लिए गए। १६ अक्तूबर को उनका व्याख्यान आर्य्यसमाज भवन (जिला जेहलम) में होना, समाचार-पत्रों में छपा है।

इसके पश्चात् पता लगता है कि ऋषि दयानन्द के जन्म-स्थान की तलाश में पण्डित लेखराम फिर राजपूताने की ओर चल दिए। बहुत से विश्वस्त पुरुषों से पता लगा कि स्वामी जी का जन्म-स्थान मोरवीराज में है, इसलिए अजमेर से आर्य्यपथिक अहमदाबाद को चल दिये। मैं बतला चुका हूँ कि बाबूराम विलास शारदा जी पर आर्य्यपथिक का बड़ा विश्वास था इसलिए काठियावाड़ से उन्हीं के नाम पत्र लिखते रहे। उस समय के लिखे हुए तीन पोस्टकार्ड मुझे मिले हैं, पहला ३० अक्तूबर, १८९२ को मोरवी से भेजा हुआ है। उसमें बाँकानीर के मार्ग से मोरवी पहुँचने का हाल लिखकर अपनी डाक महाशय

काशीराम दुबे एम० ए०, हेडमास्टर मोरबी हाईस्कूल द्वारा मंगाई है और साथ ही याचना की है कि पण्ड्या मोहनलालादि से, स्वामी दयानन्द महाराज के जन्म-स्थान के विषय में पूछ कर जो कुछ पता लग सके जानने वालों से लिखवा भेजें ।

दूसरा पोस्टकार्ड १५ नवम्बर को मोरवी की डाक में डाला गया । इसका अनुवाद यह है—"एक पत्र आपका, एक बनवारी लाल जी का, एक श्रीस्वामी आत्मानन्द जी महाराज का, एक मास्टर वजीरचन्द्र जी का पहुँच कर समाचार ज्ञात हुए । टिनकारा में मैंने (ऋषि दयानन्द जी के जन्म-स्थान की) बहुत ढूंढ़ की, पता न मिला । लोग मोरवी खास का बहुत ख्याल करते हैं । अब वहाँ अन्वेषण कर रहा हूँ ? १४ वा १५ ग्रामों में ढूँढ़ चुका हूँ ।······मुझे १०, ११, १२ (नवम्बर १८९२) को ज्वर हुआ, बड़े जोर से; परन्तु अब सर्वथा नीरोग हूँ ।·········

"पण्ड्याजी का कोई पत्र नहीं आया । वेद-भाष्य-भूमिका के विषय में मैंने एक पत्र श्यामसुन्दर जी को लिखा था, फिर आप भी (उनको) स्मरण करावें । जब से आया हूँ कोई (अङ्क) सद्धर्मप्रचारक पत्र (का) नहीं आया । यदि हो सके तो चार (पिछले) अङ्क भेज दें······इस ओर छूआछात का बड़ा झगड़ा और ज्वर का जोर है ; आर्य्यसमाज से लोग सर्वथा अभिज्ञ हैं ·················" तीसरा कार्ड ९ दिसम्बर को राजकोट से चला । इसमें लिखा है—"मैं २ दिसम्बर, १८९२ से राजकोट में आया था । यहाँ आठ दिन रहा । यहाँ का हाल मालूम किया, परन्तु कोई हाल स्वामी जी की जन्म-भूमि के सम्बन्ध में न मिला । आज फिर बांकानेर जाता हूँ और कई दिन वहाँ रहूँगा ।············ बाँकानेर प्रान्त के विषय में ही लोगों को सन्देह है कि शायद स्वामी उसी प्रान्त के हों । दूसरे मोरवी और बाँकानेर (एक दूसरे से) बहुत समीप हैं ।············ यहाँ पहले आर्यसमाज था, परन्तु अब चिरकाल से दूर हुआ है ; कोई भी आर्य्यपुरुष यहाँ नहीं है । लोगों से बात-चीत होती रहती है; उपदेशकों की बहुत जरूरत है ।"

पिछले दो कार्डों में एक और परिवर्तन देखा जाता है । जहाँ पहले पत्र और लिफाफा दोनों फारसी अक्षरों में होते थे,, वहाँ इनमें लिफाफा देवनागरी-अक्षरों में लिखा हुआ है और कुछ काल के पश्चात् देखा जाता है कि संस्कृत

वा आर्य्य-भाषा जानने वालों का नाम आर्य्यपथिक के पत्र आर्य्य भाषा में ही जाने लग गए थे।

इसी वर्ष "क्रिश्चियन मतदर्पण" मेरठ के विद्यादर्पण प्रेस में छपकर तय्यार हुआ जिसकी समालोचना १२ नवम्बर १८९२ के सद्धर्म प्रचारक में छपी है।

स० १८९३ ई० के आरम्भ में ही पण्डित लेखराम ने स्वामी दयानन्द के जन्म-स्थान के अन्वेषण का काम समाप्त कर लिया था। यद्यपि इस समय टिनकारा के समीप ही जन्म-स्थान का नया निश्चय नए आन्दोलन कर तो रहे हैं, तथापि आर्य्यपथिक ने जो निश्चय करना था उसे दृढ़ कर लिया और अजमेर लौट कर अन्तिम व्याख्यान दे कुछ और आन्दोलन करते हुए आगरे में पहुँचे। वहाँ २५ फरवरी से १ मार्च स० १८९३ ई० तक स्थानीय आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर तथा मित्र सभा में उनके व्याख्यान होते रहे। आगरा आर्य्यसमाज के उत्सव में धर्म्म-चर्चा के समय आर्य्यपथिक ने ऐसे सन्तोष-जनक उत्तर दिए कि प्रश्नकर्त्ताओं को भी मानना पड़ा कि उनकी तसल्ली हो गई है।

आगरा से मालूम होता है कि पंडित लेखराम जी फिर राजपूताने की ओर अपने पुरुषार्थ का फल प्राप्त करने अर्थात् ऋषि-जीवन के अन्वेषण का सारांश निश्चय करने के लिए चले गये क्योंकि २५, २६ मार्च, १८९३ को उन्होंने जयपुर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव पर दो बड़े ही जनप्रिय व्याख्यान दिये।

इस समय पंजाब में घरू-युद्ध की अग्नि बड़े वेग से भड़क उठी थी और जिस आर्य्य प्रतिनिधि सभा और आर्य्य समाजों की संस्था के साथ पण्डित लेखराम आर्य्यपथिक आर्य्य समाजों में नाम लिखाने के दिन से काम करते आये, उसकी अवस्था बड़ी डाँवाडोल हो चली थी। यह निश्चय करना कि वास्तविक अपराध किस दल का था, और इस बात की मीमाँसा करना कि द्वेषाग्नि का पहला पलीता किसने छोड़ा इस समय अनावश्यक है। इस विषय के पाप-पुण्य का ठीक गलों में मढ़ना उस समय होगा, जब किसी निष्पक्ष लेखनी से आर्य्य समाज का इतिहास लिखा जायगा, परन्तु यहाँ केवल

इतना बतलाना है कि घरू-युद्ध के कारण एक ओर तो सर्वसाधारण आर्य्य-जनता का समूह और सस्था का बल था। और दूसरी ओर यद्यपि जन-संख्या बहुत कम थी तथापि धन-बल, राज-बल तथा नीति-बल अधिक था। सम्मति भेद के सब कारणों में से उस समय भक्ष्याभक्ष्य का प्रश्न बहुत कुछ आगे बढ़ा हुआ था। स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने का भी यद्यपि विरोध होता था, वैदिक-साहित्य की शिक्षा मात्रा पर भी यद्यपि मतभेद था तथापि मॉस भक्षण वेद विरुद्ध पाप हे वा नहीं, इस विषय पर बड़ा भारी युद्ध था।

ऐसी विपत्ति के समय में पडित लेखराम की पञ्जाब में बड़ी भारी आवश्यकता प्रतीत हुई। प्रबल सांसारिक नीति का मुकाबला ढिलमुल विश्वासी केवल शान्ति का पाठ करने वाले स्वार्थी कैसे कर सकते? जिस प्रकार राजर्षि-गोविन्दसिंह महाराज अपने विश्वास-पात्र खालसों के विषय में कह सकते थे कि —"सवा लाख से एक लडाऊ" और जिस प्रकार अकेले नैपोलियन की रण-भूमि में उपस्थिति एक लाख सेना के तुल्य समझी जाती थी उसी प्रकार मानो ब्रह्मर्षि-दयानन्द का आत्मा अदृश्य वाणी द्वारा आर्य जनता से कह रहा था कि आर्य्य समाज की परिधि में यदि सर्व प्रलोभनों से बच कर कोई धर्म की सेवा कर सकता है तो वह लेखराम है। धन, मान, प्रतिष्ठा, प्रशसा के वशीभूत हो कर कई प्रचारकों तथा प्रतिष्ठित पुरुषों को गिरते देख आर्य्य प्रतिनिधि सभा े सामयिक प्रधान ने आर्य्यपथिक पण्डित लेखराम को पंजाब में बुला लिया।

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान का निवास-स्थान जालन्धर शहर था, इसलिए राजपूताने से पंडित लेखराम सीधे जालन्धर नगर में पधारे। १८ अप्रैल को स्थानीय आर्य-मन्दिर में ऋषि दयानन्द के जीवन पर व्याख्यान दिया और इस व्याख्यान में ही पहली बार बतलाया कि आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक के गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जन्म-स्थान कर्त्तारपुर (जिला जालन्धर) के समीप एक ग्राम में है। इसी समाचार को २१ अप्रैल, १८९३ के प्रचारक में जतला कर मैंने लिखा था "सचमुच एक महात्मा का स्वदेशी होना एक गौरव की बात है परन्तु जालन्धरियों को भली प्रकार याद रखना चाहिए कि यदि वे अपने आप को स्वामी विरजानन्द के स्वदेशी सिद्ध

करना चाहते हैं तो उनको शम और दम की दृढ़ शिक्षा लेनी होगी।''

उसी समय आर्य्यपथिक पंडित लेखराम ने, प्रसिद्ध योगराज गूगल के ाने वाले राय मूलराज बहादुर उप-प्रधान परोपकारिणी सभा से, सत्यार्थ-प्रकाश के उर्दू अनुवाद की आज्ञा माँगी थी, किन्तु मांस भक्षण के विरोधी पंडित लेखराम जी की, इस विषय में, अकृतकार्यता पर बड़ा शोक है, क्योंकि यदि उक्त पंडित जी सत्यार्थ-प्रकाश का अनुवाद उर्दू में कर जाते तो जो अशुद्धियाँ अब आर्य्य समाजियों को निरर्थक शास्त्रार्थ में फंसाती हैं उनसे वह अनुवाद विमुक्त होता।

२८ अप्रैल १८९३ के प्रचारक से "आर्य समाज की जरूरत" पर एक लेख-माला आर्य्यपथिक की ओर से आरम्भ हुई है। इस लेखमाला में ऐतिहासिक दृष्टि से आर्य्य समाज की आवश्यकता बतलाई गई है।

जालन्धर से लाहौर होते हुए पंडित लेखराम जेहलम आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए और शङ्कासमाधान में भाग लेने के अतिरिक्त उन्होंने वैदिक-धर्म की श्रेष्ठता पर एक सार-गर्भित व्याख्यान दिया। उससे पहले पंडित लेखराम औरङ्गाबाद और मियानी काला में व्याख्यान दे चुके थे।

जेहलम से छुट्टी लेकर पंडित लेखराम अपने निवासस्थान कहूटा में पहुँचे वहां एक मास तक रहे परन्तु वहाँ से भी लेख बराबर समाचार पत्रों में [विशेषतः प्रचारक में] भेजते रहे. उसी स्थान में उनके पास दीवान टेकचन्द्र [वर्त्तमान कमिश्नर] का पत्र इङ्गलैन्ड से आया था। उस पर जो नोट आर्य्य-मुसाफिर ने कहूटे से लिख कर भेजा था वह जतलाता है कि आर्योपदेशक का आदर्श वह क्या समझते थे। पंडित लेखराम लिखते हैं– 'विविध भाषाओं में सच्चे धर्म की पुस्तकों का अभाव विविध भाषाओं द्वारा आर्य्य-धर्म के उपदेश करने वालों की कमी, देशान्तरों में आर्य्य समाज का अस्तित्व अभाव के बराबर, धर्म पर जान न्यौछावर करने वालों की आवश्यकता में प्रति सैकड़ा एक सौ की कमी और और उस पर घर की फूट—त्राहि माँ! त्राहि माँ! प्यारे भाइयो! विचारो और समझो। (अंग्रेज) लोग सिविल-सर्विस पास करके जब देखते हैं कि धर्म के प्रचार की जरूरत है तो झट उससे अलग हो धर्म

के उपदेशक बनने के लिए प्रार्थनायें करते हैं, फिर ईश्वर जाने स्वीकार हो वा न। इधर हमारे यहाँ की हालत वर्णन करने योग्य नहीं है ......हमारे उपदेशकों में, थोड़े विद्वानों के अतिरिक्त, कई ऐसे भी हैं जो भोजन भट्टों की सूची में जाने योग्य हैं। क्षमा कीजिए, मैं वा अन्य कोई समाजों को भली प्रकार जानने वाला उन्हें उपदेशक नहीं मानता, क्योंकि वह तो खाकियों में खाकी, उदासियों में उदासी, निर्मलों में निर्मल और संन्यासियों में स्वामी।"

"आर्यसमाज की जरूरत" का शीर्षक देकर जो लेखमाला पंडित लेखराम ने इन दिनों सद्धर्मप्रचारक में छपवाई थी, उसमें वह कहते है—"मई सन् १८८१ में जब लेखक (पं० लेखराम) ऋषि दयानन्द की सेवा में अजमेर उपस्थित हुआ तब उन्होंने [ऋषि दयानन्द] कहा था कि आर्यसमाज की ओर से एक अंग्रेजी मासिक वा समाचार पत्र निकालना चाहिए, जिसमें वेदों के मन्त्रों का अनुवाद देने के अतिरिक्त सार्वजनिक लाभ की बातें भी दर्ज हों।"

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

वैशाख संवत् १९५० विक्रमी के आरम्भ में पण्डित लेखराम पूरे ३५ वर्ष के हो चुके थे उसी वर्ष के जेयेष्ठ मास में छुट्टी लेकर अपने निवास-स्थान ग्राम कहूटा में गये और अपनी आयु के २६ वें वर्ष के आरम्भ में मरी पर्वतान्तर्गत भन्न ग्राम निवासिनी कुमारी लक्ष्मी देवी के साथ उनका विवाह संस्कार हुआ। ऋषि आज्ञा को शिरोधार्य समझते हुए पण्डित लेखराम ने विवाह तो किया परन्तु जहाँ तक उनसे हो सका वसु* ब्रह्मचारी पद से ऊपर उठने का प्रयत्न करते रहे।

ऐसा ज्ञात होता है कि पौराणिक पूजादि तो कहां साधारण जातीय रिवाजों की जञ्जीरों को भी पण्डित लेखराम ने इस विवाह पर तोड़ डाला था हमारे चरित्र-नायक के चचा श्री गण्डाराम जी लिखते हैं कि पण्डित लेखराम ने अपने विवाह पर पंजाब के रिवाजानुसार तम्बोल इत्यादि नहीं लिया था।

मुझे पण्डित लेखराम बतलाया करते थे कि विवाह होते ही उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। देवी लक्ष्मी की अपने पति

में अनन्य भक्ति थी और इसलिए वह उन्हें प्रसन्न करने का सदा प्रयत्न किया करतीं।

विवाह के पश्चात् पंडित लेखराम कुछ दिनों और अपने ग्राम में रह कर अपनी धर्म पत्नी को धार्मिक-शिक्षा देना चाहते थे परन्तु जब उस समय के धर्म-युद्ध में सहायता की आवश्यकता होने पर मैंने उन्हें बुलाया तो गृहस्थ के सर्व विचारों को शिथिल करके वह तत्काल ही मेरे पास आ पहुँचे।

आर्य्यपथिक का आक्रमण

लाहौर में जो मांस-भक्षरण विषयक झगड़ा चला था उसको बहुत पुष्टि जोधपुर से मिली थी। जोधपुर राज के मुख्य प्रबन्ध तीन पीढ़ियों से अब तक महाराज मेजर जनरल सर प्रतापसिंह चले आते हैं। (इस समय उनका देहान्त हो चुका है) महाराज प्रतापसिंह थे तो ऋषि दयानन्द और वैदिक धर्म के दृढ़ भक्त, परन्तु उनके मनमें यह बात बैठ गई थी कि मांस-भक्षरण के बिना राजपूत जाति की वीरता स्थिर नहीं रह सकती। लाहौर में आर्य्यसमाज के दो दल हो जाने के पश्चात् स्वामी प्रकाशानन्द मांस-दल की ओर से जोधपुर पहुँचे वहां उन्होंने यह लीला रची कि समाचार पत्रों के सम्पादकों तथा धर्मोपदेशकों से मांस-भक्षरण के समर्थन में व्यवस्था दिलायी जावे। इसी लीला की पुष्टि में आर्य्य गजट, तथा भारत सुधार नामी मांस-भक्षरण का समर्थन करने वाले समाचार पत्रों के सम्पादकों को पारितोषिक मिले। एक दो प्रसिद्ध आर्य्यपुरुषों ने भी महाराजा प्रतापसिंह की हाँ में हाँ मिलाकर 'रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम्" के साक्षात् दर्शन किये। कुछ आर्य्यसमाजी पण्डितों को भी भुर्सी दक्षिणा बांटी गई। तब सोचा गया कि कोई बड़ी चोट लगानी चाहिए। उस समय पंडित भीमसेन ऋषि दयानन्द के निज शिष्य समझे जाते थे, और मेरठ के पण्डित गंगादास एम०ए० स्वर्गवासी पण्डित गुरुदत्तके पीछे उनके सदृश विद्वान् माने गए थे। इन दोनों महानुभावों को महाराजा साहब की ओर से निमन्त्रण गया, पंडित भीमसेन फिसलने वाले प्रसिद्ध थे इसलिए उनको ठीक अवस्था में रखने के लिए वीर पथिक को भेजा गया।

पण्डित भीमसेन और पण्डित गङ्गाप्रसाद एम० ए० दोनों २ अगस्त १८९३ ई० के प्रातः जोधपुर पहुँचे। पण्डित गङ्गाप्रसाद को बहुत से लालच दिये गये परन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि धन व प्रतिष्ठा का लालच उन्हें धर्म से च्युत नहीं कर सकता। ४ अगस्त को पण्डित भीमसेन जी की पहली भेंट महाराजा प्रतापसिंह से हुई। पण्डित भीमसेन ने यह तो कहा कि वेद में मांस-भक्षण का प्रत्यक्ष खण्डन है परन्तु यह मानकर कि हिंसक पशुओं का वध पाप नहीं, उन्होंने दबे दांतों ऐसे पशुओं के मांस के भक्षण का विधान कर दिया।

५ अगस्त को प्रातःकाल ही पंडित लेखराम जी जोधपुर में पहुँचे और सारा हाल सुना। वीर आर्य्यपथिक ने पंडित भीमसेन की खूब खबर ली, क्योंकि स्वामी प्रकाशानन्द ने झूठा समाचार फैलाया था कि पंडित भीमसेन मांस भक्षण का समर्थन कर आये हैं। बेचारा भीमसेन बहुत गिड़गिड़ाया परन्तु धर्मवीर बिना ठीक प्रतिज्ञा कराये कब छोड़ते थे। "ईश्वर जानता है अगर तूने महाराजा के पास स्पष्ट जाकर न कहा कि वेद में मांस-भक्षण का सर्वथा निषेध है तो तुझे किसी धार्मिक संस्था में पैर रखने के काबिल नहीं छोड़ूँगा" पंडित भीमसेन दूसरे दिन ही विदा होने गये और विना पूछे ही महाराजा प्रतापसिंह से स्पष्ट शब्दों में कह दिया—"मांसभक्षण पाप है। और वेदों में हानिकारक पशुओं को दण्ड देने और आर्थिक हानि पहुँचायें तो मार डालने की भी आज्ञा है, परन्तु मांस उनका भी अभक्ष्य ही है। और मैंने जो कहा था कि उनके मांस खाने में अधिक दोष नहीं है, (सो) उसका यह आशय नहीं लिया जा सकता कि हानिकारक पशुओं का मांस खाना चाहिए, वा उससे कोई दोष नहीं है। मेरा तात्पर्य यह था कि ऐसे पशुओं के मारने में संसार की कुछ हानि नहीं है और उपकारी पशुओं के माँस खाने की अपेक्षा कम दोष है, परन्तु दोष अवश्य है। इसलिए हानि-कारक पशुओं का मांस भी नहीं खाना चाहिए, वह भी सर्वथा अभक्ष्य है।" आर्य्यपथिक की धमकी ने इतना असर किया कि पण्डित भीमसेन के लिए जो १०००) भेंट स्वीकार हुआ था वह आधा ही रह गया और पण्डित भीमसेन की आर्य्यपथिक पर इतनी श्रद्धा बढ़ गई कि उन्होंने जोधपुर से लौटते ही पण्डित लेखराम की "तारीख-ए-दुनिया" का आर्य्य भाषा में अनुवाद करके "ऐतिहासिक निरीक्षण" नाम से मुद्रित

कर दिया और शायद इस प्रकार जोधपुर के ५००) की कमी पूरी की।

जोधपुर में मांस प्रचारकों का भण्डा फोड़ कर कुछ दिनों ऋषि-जीवन सम्बन्धी मसाला वहीं एकत्र करते रहे, परन्तु विरोधी उनके आक्रमण से ऐसे तङ्ग आ गये थे कि उन्हें अधिक दिनों तक जोधपुर ठहरनेमें अपनी बड़ी हानि समझते थे। जहाँ कहीं आर्य्यपथिक आन्दोलन करने जाते महाराजा प्रतापसिंह का गुप्तचर साथ जाता। पहले हल्ले में जो कुछ घटनायें लिखी गई वह तो ठीक रहीं परन्तु उसके पश्चात् लोगों ने डरके मारे ऋषि जीवन सम्बन्धी घटनायें ही बतलानी बन्द कर दीं। तब पडित लेखराम जी फिर पञ्जाब की ओर लौट आये।

जो पत्र जोधपुर से पण्डित लेखराम जी ने लिखे थे उनसे ज्ञात होता है कि प्रकाशानन्द जी के घोर विरोध पर भी आर्य्यपथिक अपने काम पर डटे रहे और अन्त में सारा आन्दोलन करके ही लौटे।

इन्हीं दिनों अमेरिका के चिकागो नगर की प्रदर्शिनी की तैयारियाँ हो रही थीं और आर्य्यसमाजों की ओर से कोई विशेष प्रतिनिधि भेजने का विचार छिड़ रहा था जोधपुर में ही राव राजा तेजसिंह से आर्य्यपथिकको पता लगा कि भास्करानन्द (जो महाराजा प्रतापसिंह का भेजा हुआ उन दिनों अमेरिका में था।) चाहता है कि आर्य्यसमाज उसे अपना प्रतिनिधि चुन ले। पण्डित लेखराम जानते थे कि वह धूर्त्त है अतएव उन्होंने आर्य्यजनता को सचेत कर दिया। दूसरी ओर साधु शुगनचन्द भी आशागतों में थे और अपनी वक्तृता के नमूने आर्य्य पब्लिक को दिखाते फिरते थे। पण्डित लेखराम ने स्वयं तैयार करके एक अपील बाबू रामविलास शारदा जी को दी जो उन्होंने आर्य्य पब्लिक में मुद्रित कर दी। इस अपील में २०००) तो प्रचारक के मार्ग व्ययादि के लिए माँगा गया था और सुयोग्य अँग्रेजी के विद्वान की सेवा माँगी थी। यह दूसरी बात है कि कोई भी आर्य्य पुरुष जाने को तय्यार न हुआ परन्तु आर्य्य पथिक के धर्मानुराग में इससे कोई क्षति नहीं हुई। यदि स्वयं अँग्रेजी पढ़े होते तो अवश्य स्टीमर में बैठकर चिकागो चल देते।

जोधपुर से लौटकर पंजाब में स्थान-स्थान से पण्डित लेखराम की माँग आने लगी। जहाँ कहीं भी विरोधियों की ओर से आर्य्यसमाज पर आक्रमण होता, रक्षा के लिए आर्य पथिक को कष्ट देना पड़ता।

पंजाब में लौटते ही पहला धावा पण्डित लेखराम का श्री गोविन्दपुर (जि० गुरुदासपुर) पर हुआ। २३, २४ सितम्बर सं० १८९३ को बराबर वार्षिकोत्सव मनाया जाता रहा जिसमें पण्डित लेखराम का सर्वोत्तम व्याख्यान हुआ। परन्तु आर्य पथिक के उच्च स्वभाव का इससे पता लगता है कि उत्सव का हाल प्रचारक में भेजते हुए जहाँ अन्य सब उपदेशकों के व्याख्यानों की बड़ी प्रशंसा की है वहाँ अपने व्याख्यान का साधारण वृत्तान्त कालम की अढ़ाई पंक्तियों में समाप्त कर दिया है। मुझे आर्य पथिक के पत्र-व्यवहार से भी प्रमाण मिले हैं और मैं स्वयं भी जानता हूँ कि अन्य बहुत-से उपदेशकों की शैली के विरुद्ध पण्डित लेखराम का सदैव यह प्रयत्न हुआ करता था कि आर्य्य समाज की वेदी से जो भी उपदेशक व्याख्यान देने खड़ा हो वह सर्वसाधारण में कृत-कार्य होकर ही बैठे।

श्री गोविन्दपुर से लौटकर ऋषि-जीवन का वृत्तान्त एकत्र करते हुए पण्डित लेखराम मेरे पास जालन्धर पहुँचे और मुझे पेशावर आर्य्य समाज के उत्सव पर ले जाने के लिए आग्रह किया। मुझे इन्कार कब हो सकता था।

पेशावर की इस बार की यात्रा मुझे केवल इसीलिए स्मरणीय नहीं है कि मैं पहले पहल अटक से पार चला था। प्रत्युत इसलिए भी कि पण्डित लेखराम के कई पक्के विचार मुझे इसी यात्रा में मालूम हुए। पण्डित लेखराम पलाण्डु (पियाज) के बड़े पक्षपाती थे और समझते थे कि इसके सेवन से आर्य्य गृहस्थी को वंचित रखना अपनी जाति की शारीरिक अवस्था के साथ शत्रुता करनी है। मुझसे पहले इस विषय पर बातचीत हुई। मेरे मनु का प्रमाण देने पर आपने कहा—"प्रथम तो पलाण्डु के अर्थ प्याज हैं ही नहीं; और यदि मान भी लो तो यह श्लोक ही प्रक्षिप्त है।"

इस विषय पर आर्य पथिक ने नोट-बुक में "रिसाला अंजुमन ज़िराअत बिजनौर" से नीचे का उदाहरण दिया है—"पियाज़ की तासीर इसके खाने से मोटा होता है, रक्त में प्रवाह में आता है, तरकारियाँ इससे मजेदार होती हैं, लहसुन के बराबर गुण हैं। मगर बलगम बढ़ाता है। जुकाम के लिए गुणकारी है। श्वेत प्याज घर में रखने से साँप वहाँ पर नहीं आता।"

फिर ब्रह्मावर्त्त की सीमा पर बात-चीत छिड़ी। पण्डित लेखराम जी ने पौराणिकों की मानी हुई सरस्वती का खण्डन करके बतलाया कि सरस्वती का तात्पर्य "ब्रह्मपुत्रा" नदी का है जो भारत की पूर्वीय सीमा पर होती हुई समुद्र में जा मिलती है। आपने कहा—"सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री कही जाती है, पुत्र का स्त्रीलिंग हुआ पुत्रा, पस "ब्रह्मपुत्रा" और सरस्वती पर्यायवाची शब्द हैं। सरस्वती कोई ऐसी नदी न थी जो मध्यभारत में कहीं छिप गई हो।" इसके पश्चात् आपने दृषद-वती से 'अटक' महानदी का तात्पर्य लिया। यहाँ पर याद रखना चाहिए कि यदि सरस्वती पौराणिक कथा के अनुसार मानी जावे और "दृषदवती" से ब्रह्मपुत्रा नदी समझें तो पंडित जी का निवास स्थान कहूटा ब्रह्मावर्त में सिद्ध नहीं होता। अब दूसरी प्रभात की घटना समझ में आ जायगी।

बातचीत करते-करते हम दोनों सो गये। प्रातः उठकर मैं अपने विचार में निमग्न था कि रेल अटक के पुल के पास पहुँची और पंडित लेखराम ने मेरी बाँह पकड़कर कहा—"लाला जी! उठिये, उठिये! देखिए क्या इससे बढ़कर कोई पत्थरों वाली नदी हो सकती है?" दृश्य बड़ा गम्भीर तथा उच्च था। मैं इस अपूर्व चित्तोत्कर्षक दृश्य की ओर टकटकी लगाये खड़ा था कि आर्य्यपथिक के शब्दों ने झटका देकर जगा दिया—"लालाजी देखिए—यह पत्थरों वाली दृषद्वती नदी है, सरस्वती ब्रह्मपुत्रा है और इन दोनों देवनदों के मध्य का स्थान ब्रह्मावर्त है।" मैंने उत्तर में कहा—"पण्डित जी मैंने आज मान लिया कि "कहूटा" ग्राम ब्रह्मावर्त का ही एक भाग है।" पण्डित जी के मुख पर विशाल मुसकराहट के चिन्ह दिखाई देने लगे और हँसते हुए बोले—"ईश्वर जानता है, आप मज़ाक में बात उड़ा देते हैं। मेरा मतलब तो इल्मी तहकीकात से था।"

व्याख्यानादि तो वार्षिकोत्सव में हुए ही परन्तु धर्म-चर्चा के समय बड़ा आनन्द आया। यह बात प्रसिद्ध थी कि पण्डित लेखराम वृक्षों में जीवात्मा को विद्यमान नहीं मानते थे। एक मांस प्रचारक व्यक्ति ने यह प्रश्न उठाकर कि वृक्षों में जीवात्मा है या नहीं उत्तर पण्डित लेखराम से माँगा; तात्पर्य इस प्रश्न से यह था कि वृक्षों में जीव विषय में मतभेद रखता हुआ एक पुरुष आर्य्य

समाजी रह सकता है तो माँस-भक्षण का प्रचार करने पर किसी को क्यों आर्य्य समाज से अलग किया जावे। मैं यह कहकर, कि प्रश्न आर्य्य समाज पर होना चाहिए न कि विशेष पर, उत्तर के लिये उठा ही था कि पण्डित लेखराम स्वयं उत्तम उत्तर देने के लिए खड़े हो गये और निम्नलिखित मनोरंजक प्रश्नोत्तर हुए—

प्रश्नकर्त्ता—"क्या आप वृक्षों में जीव मानते हैं ?"

उत्तर—"क्या एक जीव ? एक वृक्ष में एक क्या, अनेक जीव पाये जाते हैं और ऐसा ही मैं मानता हूँ।"

प्रश्न—"मैंने तो सुना था कि आप वृक्षों में जीव नहीं मानते।"

उत्तर—"तुम अजब भोले आदमी हो। अब तो मैं तुम्हारे सामने हूँ। सुनी सुनाई बात पर बुद्धिमान पुरुष विश्वास नहीं करते। कल्पना करो कि वृक्ष को जीवधारी ही मान लें तो ऐसी अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि वृक्ष में जीव सुषुप्तावस्था में है। तब तुम्हारा बकरे आदि का माँस खाना क्या वृक्ष के फल खाने के समान होगा ? भोले भाई पशु पक्षी का माँस बिना हिंसा के उपलब्ध नहीं होता, और वृक्ष को तुम्हारे फल तोड़ लेने से कुछ कष्ट ही नहीं प्रतीत होता।"

श्रोतागण को पता लग गया कि प्रश्न कुटिल भाव से किया गया है और प्रश्न-कर्त्ता लज्जित होकर बैठ गया।

पण्डित लेखराम की हाजिर-जवाबी उन्हें बहुधा अनावश्यक वाद-विवाद से बचा दिया करती थी। एक बार रेल की यात्रा में एक उदासी साधु का साथ हुआ। बातचीत चलने पर उसने स्वामी दयानन्द को साधु-निन्दक सिद्ध करने के लिए कहा—"दयानन्द जी ने गुरु नानक जी को दम्भी लिखा है और उनकी निन्दा की है। यह संन्यासियों का काम नहीं।" पण्डित लेखराम उदासी जी को बड़े प्रेम से समझाने लगे और कहा—"देखो, बाबा नानक जी के आशय की तो स्वामी जी ने प्रशंसा ही की है। हाँ, वेदों की कहीं-कहीं निन्दा उनसे सहन न हुई और संस्कृत न जानते हुए भी उसमें पग अड़ाते देखकर यह लिखा है कि दम्भ भी किया होगा।" पण्डित लेखराम ने बहुत कुछ समझाना चाहा परन्तु

उस उदासी बाबा ने शोर मचा दिया और उनकी एक न सुनी। मेरे शिर में कुछ पीड़ा थी इसलिए मैं स्टेशन आने पर दूसरे कमरे में चला गया। अगले स्टेशन के रास्ते में भी उदासी बाबा बहुत गरम रहे, परन्तु जब अगले स्टेशन पर रेल धीमी हुई तो उदासी जी दबे हुए से प्रतीत हुए और पण्डित लेखराम तेज सुनाई दिये। मैं भी फिर उसी कमरे में चला गया तो विचित्र दृश्य देखा। उदासी तो कुछ शाँति की याचना कर रहे हैं और पण्डित लेखराम उनको दबा रहे हैं। मालूम हुआ कि जब समझाने पर उदासी दबाये ही चला गया तो पण्डित लेखराम ने कड़क कर कहा—

अच्छा अगर बाबा नानक खुद कहते हैं कि मुझ में दम्भ है तो ?" उदासी कुछ आश्चर्य चकित सा होकर बोला "यह क्या?" पण्डित लेखराम ने सिक्खों के ग्रन्थ से एक वाक्य पढ़ा जिसमें दो तीन साधारण निर्बलताओं के साथ दम्भी शब्द भी था। अब तो उदासी बाबा कुछ ढीले हुए और जब मैं पहुँचा तो कह रहे थे—"यह तो कसर-नफ़सी है। इसका यह मतलब थोड़े ही है कि श्री महाराज दम्भी थे।" हाजिर जवाब लेखराम ने उत्तर में दस घृणित पापों के नाम ले ले कर कहा—'यह सब पाप अपने में क्यों न बतलाये ? तुम बाबा नानक को मक्कार समझते हो ; हम तो उन्हें ईश्वर के सच्चे भक्त समझते हैं। उन्होंने मेरे कहे हुए दुराचारों का नाम इसलिए नहीं लिया कि उनमें वह ऐब न थे। दो तीन कमजोरियाँ ही गरीब में थीं और उनसे बचने की प्रार्थना अपने मालिक से की। तुम चाहे अपने गुरु को मक्कार समझो हम तो बावा नानक देव जी को सच्चा ईश्वर भक्त समझते हैं।

उदासी जी फिर कुछ गुन गुनाना चाहते थे परन्तु आर्य्यपथिक ने यह कहकर बातचीत समाप्त कर दी—"बस साहब ! मैं तुमसे बात करना भी पाप समझता हूं। तुम गुरु निन्दक हो" और उदासी जी की वाणी पर ताला लग गया।

पेशावर के जलसे पर जाने से पहले पण्डित लेखराम माँस-भक्षण के विषय पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखवाकर छपवा गये थे जिसकी समालोचना ६ कार्तिक संवत् १९५० के सद्धर्म प्रचारक में निकली थी। एक लघु पुस्तक का नाम था 'आर्य्य समाज में शान्ति फैलाने का उपाय और रामचन्द्र जी का सच्चा

दर्शन।" वेद-शास्त्र के प्रमाणों से माँस-भक्षण का निषेध दिखलाते हुए स्वामी दयानन्द जी के मन्तव्य को उनके ग्रन्थों से स्पष्टतया दिखलाया और अन्तिम भाग में "रामचन्द्र का दर्शन" नामी काव्य के कवि की इस कल्पना का (जो वह जन-साधारण में मौखिक फैलाते थे कि रामचन्द्र जी ने माँस खाया, "रामचन्द्र का सच्चा दर्शन" लिखकर प्रबल प्रमाणों तथा युक्तियों से खण्डन किया।

जिन सज्जनों को माँस का प्रचार अभीष्ट था और जो माँस भक्षण से ही राष्ट्र में जीवन फूंकना सम्भव समझते थे वे प्रायः पण्डित लेखराम को "पेशावरी गुण्डा" की उपाधि देते थे। यह इसलिए नहीं कि पण्डित लेखराम कुछ अधिक कटु वचन बोलना व बहुत तीखा व्यक्तिगत आक्रमण करते थे, प्रत्युत इसलिए कि जहाँ औरों के कटाव "व्यक्तिगत आक्रमण" कह कर टाले जा सकते थे वहाँ आर्य्य पथिक की युक्तियों का युक्ति-युक्त उत्तर देना बड़ी टेढ़ी खीर थी। इसी लघु पुस्तक के प्रथम भाग में केवल प्रमाण दिये और उनका समर्थन युक्तियों से किया है। समाप्ति पर ग्रन्थ-कर्त्ता का केवल तीन पंक्तियों में निवेदन है—"पस, सब वेद के मानने वालों को योग्य है कि यथार्थ सत्य-शास्त्र की रीत्यनुसार मद्य-मांसादि दुष्ट वस्तुओं का त्याग करके सदा उस भोजन का भोग करें जो रक्त-युक्त न हो और जिसके लिए हमें निरपराधी पशुओं के गले पर छुरी न चलानी पड़े, यथा ईश्वर की आज्ञा है।"

इस लेख को पढ़कर सर्व पाठकों को उन लोगों की बुद्धि पर आश्चर्य होगा जिन्होंने लेखराम को "पेशावरी गुण्डा" की उपाधि देने वालों ने लेखराम के पवित्र नाम से हिमालय की चोटियों तक को गुंजा दिया और सच्चे ब्राह्मण उपदेशक के चरणों में शिर नवा कर अपने किये पाप का प्रायश्चित्त किया।

पेशावर से लौटने के पश्चात् हम पं० लेखराम को २८-२९ अक्तूबर रावलपिण्डी में और ३१ अक्तूबर १८९३ के दिन लाहौर में, "वर्तमान दशा और हमारे कर्त्तव्य" पर व्याख्यान देता पाते हैं। फिर नवम्बर के आरम्भ में उनका व्याख्यान जालन्धर आर्य्य-समाज में हुआ। शायद इसी सन् के सितम्बर

मास में पं० लेखराम अपनी पत्नी को जालन्धर ले आये थे और इसलिये यही नगर उनका निवासस्थान बन गया था।

जालन्धर में ही बैठकर जहाँ एक ओर पं० लेखराम ने ऋषि जीवन की तय्यारी का आरम्भ किया वहाँ उन्हीं दिनों अपनी सबसे बड़ी पुस्तक "सबूत-ए-तनासुख" नामी पुनर्जन्म को सिद्ध करने के लिये लिखकर पूर्ण कर ली और उसके छपाने का विज्ञापन भी सद्धर्म-प्रचारक में दे दिया। इस पुस्तक पर जो परिश्रम करना पड़ा होगा उसका अनुमान वे सज्जन ही लगा सकते हैं जिन्होंने ससार भरके मतवादियों के आक्षेप इस सिद्धान्त पर पढ़े हैं। बाहर वालों को तो एक सदा भ्रमण करने वाले यात्री की लेखनी से ऐसा अपूर्व ग्रन्थ तैयार होते देख कर विस्मयसा होता था परन्तु मुझसे व्यक्ति को जिसने आर्य्य पथिक को एक पल भी व्यर्थ गंवाते नहीं देखा था कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ।

इन दिनों आर्य्य समाज में घरू युद्ध की ज्वाला बड़े वेग से प्रज्वलित हो रही थी। लाहौर में आर्य्य समाज के दो टुकड़े हो चुके थे और आर्य्य-प्रतिनिधि सभा के वार्षिकाधिवेशन में भी शिक्षित दल की सभ्यता का चमत्कार दिखाई दे चुका था। परन्तु पण्डित लेखराम उस समय भी बाह्य विरोधियों के आक्रमणों से ही आर्य्य समाज की रक्षा करने में लगे हुए थे। चारों ओर से महम्मदियों के आक्रमण रोकने के लिये आर्य्य पथिक की माँग आती थी; इसीलिये २७ कार्त्तिक १९५० के प्रचारक में मैंने लिखा था—'ज्ञात हुआ है कि महाराजा कृष्णप्रसाद जी पेशकार मन्त्री सेना विभाग (राज हैदराबाद दक्षिण) इसलाम की ओर झुके हुए हैं और आर्य्य पथिक की मांग हो रही है। परन्तु कुराना-चार्य्य जहाँ एक ओर महर्षि के जीवन-चरित्र की तैयारी में सन्नद्ध है वहाँ दूसरी ओर शरीर को खेद भी है। लेकिन एक आदमी क्या-क्या कर सकता है·········।"

पडित लेखराम को मैंने इन दिनों ऋषि जीवन वृत्तान्त की तय्यारी में निरन्तर लगा दिया था, परन्तु अपना नियत काम समाप्त करने पर उन्होंने जालन्धर के बाजारों में नित्य प्रचार करना आरम्भ कर दिया। जालन्धर में भी आर्य्यपथिक को बैठने कौन देता था। इसी वर्ष (सन् १८९३ ई०) के

दिसम्बर में लाहौर नगर इण्डियन नेशनल कांग्रेस का केन्द्र बन रहा था। राजनैतिकों के शिरोमणि दादा भाई नौरोजी प्रधान निर्वाचित हुए थे। दूर-दूर से आर्य भाई भी आये थे। इस अवसर पर पंडित लेखराम को भी व्याख्यानों के लिये लाहौर बुलाना पड़ा। फिर लाहौर से लौटते ही समाचार आया कि शाहाबाद (जिला अम्बाला) के पास एक ग्राम में कुछ हिन्दू महम्मदी मत ग्रहण करने वाले हैं। पण्डित लेखराम की टांग में एक फोड़ा था जिससे वह तङ्ग थे। मैंने उत्तर दिया—"पण्डित जी यह लोग बड़े निर्दय हैं। समझते नहीं कि हर समय मनुष्य का स्वास्थ्य एकसा नहीं रहता। आप इस विषय में कुछ न सोचें, मैं उत्तर दे दूँगा।"

पण्डित लेखराम मेरे कार्य्यालय के सामने वाटिका की दूसरी सीमा वाले कमरे में काम किया करते थे; वहाँ चले गये। आध घण्टे के पश्चात् फिर मेरे पास आकर बैठ गये—"क्यों साहब! किसको भेजने का ख्याल है?" मैंने उत्तर दिया—"पण्डित जी! यह लोग बड़े बेपरवा हैं। इनको स्वयं भुगताना चाहिए, और क्या हो सकता है।" आर्य्यपथिक कुछ रुक-रुक कर बोले—वे गरीब क्या करेंगे "कुछ तो इन्तजाम होना चाहिये" मैंने उत्तर में कहा—"कहिये तो पण्डित लालमणि को भेज दूँ।" पण्डित लेखराम मुस्करा कर बोले—"ईश्वर जानता है आपने मुझे कायल कर दिया; रात को रेल में ही चला जाऊँगा।"

पण्डित लेखराम जी की धर्मसेवा के भाव का यह एक ही दृष्टान्त नहीं है। मैंने यह एक नमूना पेश किया है।

शाहाबाद के पास वाले ग्राम में मुसलमान होने वालों को बचाकर इस्माईलाबाद में तीन व्याख्यान दिये जिनके प्रभाव से पीछे वहाँ आर्य्यसमाज स्थापित हो गया। फिर शाहाबाद, थानेश्वर, और करनाल में व्याख्यान देकर जालन्धर लौट आये। शाहाबाद में आर्य्यसमाज का स्थापित होना भी इसी बार के प्रचार का फल था। इस धावे पर जाते हुए मैंने आर्य्यपथिक से प्रतिज्ञा की थी कि छुट्टी के दिनों में मैं भी उनकी सहायता के लिए पहुँचूँगा, परन्तु उन्होंने शाहाबाद पहुँचते ही मुझे लिख दिया कि मेरी कुछ आवश्यकता नहीं। पण्डित लेखराम किसी को भी अनावश्यक कष्ट नहीं देते थे और यह

देखकर कि मेरी अनुपस्थिति में आर्य्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का काम बिगड़ेगा उन्होंने अकेले ही सब काम कर लिया।

ऊपर लिखित सब काम करते हुए भी पण्डित लेखराम को अन्ध-विश्वासों की पोल खोलने के लिये समय मिल जाता था। २० जनवरी सन् १८६४ ई० के ताजुल अखबार में एक समाचार निकला कि एक सय्यद जलाली की कब्र खुदवाकर टाउनहाल में मिलाने के कारण मुजफ्फर नगर का एक तहसीलदार अन्धा हो गया और जाइण्ट मजिस्ट्रेट पागल हो गये। पण्डित लेखराम ने समाचार पढ़ते ही अपने एक मित्र, जफ्फर नगर के रईस से असल हाल पूछा जिनके पत्र से यह समाचार सर्वथा झूठा सिद्ध हुआ, उस पत्र व्यवहार को पण्डित लेखराम ने २२ माघ १६५० के सद्धर्म प्रचारक में छपवा दिया।

फरवरी, १८६४ में मान्ट-गुमरी आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देने के अतिरिक्त झंग और कमालिया आदि स्थानों में प्रचार करते हुए लाहौर पहुँचे। इसी मांस के प्रचारक में एक लेख माला आरम्भ हुई जिसे पण्डित लेखराम के धर्म पर बलिदान होने के पश्चात् "तकजीब बुराहान अहमदिया" के दूसरे भाग में सम्मिलित किया गया था। इस लेखमाला में अकाठ्य प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि "असकन्दिरिया" (मिश्र प्रान्त) का प्रसिद्ध पुस्तकालय महम्मदी पक्षपात की ही भेंट चढ़ा था।

ऋषि जीवन की तय्यारी के साथ साथ मौखिक धर्म-प्रचार का कार्य्य भी बराबर जारी रहने का प्रमाण समाचार पत्रों के अवलोकन से मिलता है। १४ मार्च तक श्री गोविन्दपुर तथा आस पास के ग्रामों में धर्म-प्रचार की धूम रही, शङ्का-समाधान खूब होता रहा। वहां से लौटकर कुरुक्षेत्र की भूमि में प्रचार के लिए पण्डित लेखराम मेरे साथ चल दिये।

जिस प्रकार चन्द्र-ग्रहण पर काशी में गङ्गास्नान का माहात्म्य है उसी प्रकार सूर्य्य-ग्रहण को कुरुक्षेत्र के तालाब में डुबकी लगाने से, पौराणिक मतावलम्बी, स्वर्ग प्राप्ति की कल्पना करते हैं। ६ अप्रैल, १८६४ को सूर्यग्रहण होने वाला था इसलिए २६ मार्च को ही, सरकारी हस्पताल के पास सड़क के किनारे पर साफ करके आर्य्य समाज का प्रचार मण्डप खड़ा कर दिया गया

और अप्रैल के आरम्भ से ही वैदिक-धर्म के प्रचार का काम शुरू हो गया। इस प्रचार में शङ्का-समाधान का काम प्रायः पण्डित लेखराम जी ही करते रहे। "धर्म का असलियत और उसका आन्दोलन" विषय पर जो व्याख्यान इस स्थान पर पण्डित लेखराम ने दिया वह बड़ा ही चित्ताकर्षक था। दूसरे व्याख्यान में आपने यह बतलाया कि आर्य्य-समाज ऋषियों की निन्दा नहीं करता बल्कि उनके सिद्धान्तों को फैलाता है ६ अप्रैल को मेरे साथ पण्डित लेखराम करनाल चले आये जहाँ ७, ८ और ६ अप्रैल को आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में दो व्याख्यान देने के अतिरिक्त शङ्का-समाधान भी खूब किया। वार्षिकोत्सव के पश्चात् मैं तो चला आया परन्तु आर्य्य मुसाफिर एक मास तक करनाल में ही रहे क्योंकि जिस टांग के फोड़े के कारण मैं उन्हें शाहाबाद नहीं भेजना चाहता था वह फोड़ा इतस्ततः भ्रमण करते फिरने के कारण बहुत खराब हो गया था। इसी फोड़े के सम्बन्ध में एक मनोरंजक बात मुझे याद आई है। पण्डित जी ने कुछ सभासदों से पूछा—"किसी आर्य्य-डाक्टर के पास मुझे ले चलो तो फोड़ा दिखलाऊँगा।' एक अधिकारी ने किसी मुसलमान डाक्टर का नाम लेकर कहा कि उसे बुलाकर दिखायेंगे। पण्डित जी ने फिर पूछा कि क्या कोई आर्य्य डाक्टर नहीं है। लाला कर्त्तराम ने कहा—"डाक्टर तो कोई आर्य्य समाज का सभासद नहीं। इलाज में आर्य्य अनार्य-पना क्या घुसा है।" आर्य्य-पथिक की आँखें लाल हो गईं और बोले—"खाक आर्य्य-समाज है! एक डाक्टर को भी आर्य्य नहीं बना सकते।" मैंने हँसकर कहा कि जिस समाज का कोई डाक्टर सभासद् न हो तो क्या उसे आर्य्य समाज ही न कहा जाय। आर्य्य पथिक ने कुछ गम्भीर होकर उत्तर दिया—"जिस आर्य समाज ने डाक्टरों, स्कूल के अध्यापकों और विद्यार्थियों को आर्य नहीं बनाया उसने क्या खाक काम किया। जड़ को सींचने से ही वृक्ष हरा होता है।" इस उत्तर ने मेरा अन्तःकरण तक लेखराम के पैरों में झुका दिया था।

इस एक मास के करनाल निवास के समय की कुछ घटनाये लाला कर्त्ताराम जी ने लिखी हैं जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त यहाँ देना शिक्षाप्रद होगा—
"एक दिन एक पादरी साहब पण्डित जी से मिलने के लिए आर्य मन्दिर में आये। मेरे सामने उन्होंने वैदिक-धर्म के विषय में कुछ प्रश्न किये जिनका उत्तर

पण्डित लेखराम जी ने बड़े नम्र, मधुर शब्दों में दिया। इसके पश्चात् पं० जी ने क्रिश्चियन मत के विषय में कुछ बातें पूछीं जो पादरी साहब के बतलाने पर नोट कर लीं। पादरी साहब ने विदा होते समय पं० जी की योग्यता और शिष्टाचार की बहुत प्रशंसा की।

"इन्हीं दिनों करनाल पोस्ट आफिस के महाशय गोपाल जी सहाय के पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषी ने व्यवस्था दी कि लड़का माता, पिता, भाइयों को मार कर रहेगा। माता, पिता ने उसके लिए दूसरे माता पिता ढूँढने चाहे परन्तु ऐसी उत्तम ख्याति वाले बालक को अङ्गीकार कौन करता। पण्डित लेखराम को जब पता लगा तो उन्होंने समझाकर महाशय गोपाल सहाय को ऐसी अनुचित कार्यवाही से रोका। परिणाम यह हुआ कि न केवल सारा परिवार ही जीवित है प्रत्युत उस बालक के दो भाई और हो चुके हैं और पिता की वेतन वृद्धि होती रही।

"पण्डित जी सन्ध्या-वन्दन में बड़े पक्के थे। नित्य शारीरिक व्यायाम भी करते थे। निकम्मे, खराब पके हुए भोजन से उन्हें घृणा थी। भोजन छादन में सावधान रहते। एक बार मैंने कहा—"महाराज! आपको भोजन विषय में कुछ नहीं कहना चाहिये। यह आपकी शान के बरखिलाफ है।" बड़ी सखती से जवाब दिया—"हम लोग जो दिन रात बाहर घूमते और दिमाग़ी काम करते हैं अगर भोजन छादन में बेपरवाई करें तो काम कैसे होगा। जो उपदेशक इस विषय में सचेत न रहेंगे वे या तो शीघ्र मर जायेंगे या काम से थक कर बैठ जायेंगे।

"प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठते थे। शौच के लिए बाहर जङ्गल में जाते थे। समय व्यर्थ नहीं खोते थे। कभी ख़ाली बैठे नहीं देखे गये। रात के ठीक दस बजे सो जाते थे। चार पाँच घन्टे बराबर उपदेश देना उनके लिये साधारण बात थी। ऐसा निडर, धर्मात्मा, सदाचारी उपदेशक मैंने और नहीं देखा। करनाल से शायद मई १८९४ के मध्य भाग में आर्य्य-पथिक लौट आये और फिर जालन्धर में बैठकर ऋषि-जीवन सम्बन्धी काम करते रहे। इस अन्तर में उन्होंने स्थानीय प्रचार बन्द नहीं किया और आस पास भी धर्म-प्रचार के लिए

जाते रहे। ५ जुलाई को उनका व्याख्यान जालन्धर आर्य्यमन्दिर में होना छपा हुआ है।

६ जुलाई १८३४ को पण्डित लेखराम जी मेरे साथ क्वेटा आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चले। रास्ते में मुलतान में एक व्याख्यान देकर क्वेटा पहुँचे। वार्षिकोत्सव से पहले "पुनर्जन्म" विषय पर उनका बड़ा सार-गर्भित और आन्दोलन पूर्ण व्याख्यान हुआ था। मैं तो वार्षिकोत्सव के पश्चात् १०००) से अधिक धन वेद-प्रचार के निधि के लिए लेकर लौट आया परन्तु पण्डित लेखराम जी क्वेटे में ही रह गये। वहां उनके १३ व्याख्यान हुए। वहाँ से हिरक, दोजन, मच्छ, बोस्तान, खोस्ट, शाहरिग में, कहीं दो कहीं तीन, व्याख्यान देते हुए सीबी में पहुँचे। १ अगस्त को यहाँ बड़ा प्रबल व्याख्यान हुआ और २ अगस्त को फिर सीबी निवासियों को सच्चे धर्म का सन्देश सुनाया गया। ५ अगस्त को पांच छः सौ की जन-उपस्थिति में "दीन महम्मद" और "महम्मद मुस्तफा" को शुद्ध करके फिर से वैदिक-धर्म में प्रविष्ट कराया गया। ८ अगस्त को सक्खर में पहला व्याख्यान हुआ, और फिर तीन और व्याख्यान देकर आर्य्य-पथिक ने सं० १८९४ ई० के आरम्भ में ही, जब कि उनको ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र को शीघ्र छपवा डालने की आशा बन्ध गई थी, भारतवर्ष का सविस्तार इतिहास निकालने से पहले एक मासिक पत्र निकालने का विचार किया था। उसका नामकरण संस्कार "विद्यावर्तक" किया था और उद्देश्य यह था कि उसके द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्य्य जाति की सेवा के सब काम किये जावें। अगस्त १८९४ में पहले अङ्क की विषय सूची इस प्रकार तय्यार की थी—

(१) कितने आर्य-समाज स्थापित हुए, (२) कितने मुसलमान या ईसाई वा मुसलमान शुद्ध हुए, (३) कितनी विधवाओं के विवाह हुए, (४) विद्या सम्बन्धी लेख (५) नये विद्या सम्बन्धी निरूपण, (६) वेद सम्बन्धी शङ्काओं का समाधान, [७] ऋषियों के जीवन चरित्र।

पण्डित लेखराम की इस शुभ इच्छा की पूर्ति के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने उनकी मृत्यु के डेढ़ वर्ष पश्चात् "आर्य्य मुसाफिर" नामक

मासिक पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया था जो अब तक गिरता पड़ता चल रहा है। यदि इस पत्र को समयानुसार उर्दू भाषा में तत्त्वान्वेषण का साधन बनाया जावे तभी आर्य्य-समाज को एक जागृत शक्ति कहा जा सकेगा।

सितम्बर, १८९४ का एक और नोट मुझे मिला है जिससे पण्डित लेखराम के हृदय के भाव विस्पष्टता से प्रतीत होते हैं—

"समग्र भारतवर्ष को आर्य-धर्म में लाने के निम्न साधन हैं। यदि इनमें हम, ईश्वर की कृपा से, कृत-कार्य हों तो अवश्य सब लोग सद्धर्म में आ जावें:—

प्रथम—विधवा विवाह या और कोई साधन जिससे भविष्य में स्त्रियाँ मुसलमानी वा ईसाई न हों।

द्वितीय—शुद्धि फन्ड जिससे सब मतों के अनुयायी वैदिकधर्म में आ सकें।

तृतीय—वेद प्रचार निधि स्थापित करना अर्थात् उपदेशक तय्यार करना।

चतुर्थ—बचपन का विवाह रोकना।

पंचम—पुस्तक प्रचार प्रत्येक भाषा में और साइन्स की वह बातें जो वेद धर्म के विरुद्ध हों, उन पर विचार करना।

षष्ठ—साधु कम हों और उपदेशक बनकर वर्तमान साधु धर्म का कार्य करें।

सप्तम—दान की व्यवस्था ठीक करना।"

सितम्बर १७९४ के मध्य में हम पण्डित लेखराम को श्री गोविन्दपुर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं; और इन्हीं दिनों प्रचारक में "दरियाई मजहब" पर आर्य्य पथिक का एक विस्तृत नोट देखते हैं।

ऐसा मालूम पोता है कि श्री गोविन्दपुर से निवृत्त होकर पण्डित लेखराम कुछ दिनों जालन्धर में जीवन-चरित्र का काम करते रहे और फिर २९ और ३० अक्तूबर को गुरुदास पर आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। दोनों दिन "पुनर्जन्म" और "सच्चाई का मजबूत चट्टान" विषयों पर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े गम्भीर और जन-प्रिय व्याख्यान देकर महम्मदी प्रश्न कर्त्ताओं की शंकाओं का भी समाधान किया। गुरुदासपुर से लौट कर ही, अपनी

धर्मपत्नी को घर पहुँचा, पण्डित लेखराम कोहाट पहुँचे जहाँ उन्होंने ५ नवम्बर से ११ नवम्बर, सं० १८९४ तक बराबर ६ व्याख्यान दिये। इन्हीं दिनों एक आर्य्य भाई के यहाँ मौत हो जाने पर आर्य-पथिक ने मृतक संस्कार वैदिक रीत्यनुसार कराया।

कोहाटा में पण्डित लेखराम के व्याख्यानों की वैसी ही धूम मच गई जैसी अन्य स्थानों में सुनने में आती थी। यहाँ बन्नू आर्य्य-समाज की ओर से तारों पर तारें आती रहीं क्योंकि एक मास से बन्नू निवासी आर्य-पथिक के व्याख्यानों के प्यासे बैठे थे। अन्त को १२ नवम्बर के दिन कोहाट से तार-समाचार पहुँचा कि पण्डित लेखराम जी टाङ्गा में बन्नू को चल दिये हैं। आर्य्य भाई नगर निवासियों समेत टाङ्गा के स्थान में पहुँच गये और हमारे चरित्र-दायक का स्वागत कर भजन कीर्तन करते हुए उन्हें नौ बजे रात के आर्य्य-मन्दिर में पहुँचाया।

दूसरे दिन से ही व्याख्यानों का सिलसिला शुरू हो गया। ईश्वर की हस्ती, मुक्ति-पथ, धर्म्म, सचाई का चट्टान और आर्य्य-जीवन (विषयों) पर बड़े सार-गर्भित तथा दिलों को हिलाने वाले व्याख्यान हुए। एक दिन प्रश्नोत्तर के लिए रक्खा गया जिसमें किसी अन्य मतावलम्बी ने तो कोई प्रश्न न किया, किन्तु सनातन-धर्म्म-सभा के मन्त्री का पत्र आदित्यवार को शास्त्रार्थ के लिए नियत करने के निमित्त आया। तदनुसार आदित्यवार को बड़ी जन-उपस्थिति में सनातन-सभा के मन्त्री तथा एक अन्य पण्डित का "काफियातङ्ग" कर दिया। इन्हीं दिनों में से १९ जनवरी का दिन अपने अन्वेषण के अनुराग की तृप्ति के लिये नियत किया और ग्राम कञ्किभरत् के खण्डरात को जाकर देखा। लोगों में प्रसिद्ध है कि भरत की नन्हसाल अर्थात् महाराजा कैकय की राजधानी इसी स्थान में थी। एक पुराना सिक्का देखकर पीछे से उसको २२) रुपयों तक खरीदने की भी आज्ञा मन्त्री आर्य्य-समाज को भेजी, किन्तु जिस मनुष्य के पास वह सिक्का था, वह उस समय मर चुका था।

२० नवम्बर को पण्डित लेखराम का अन्तिम व्याख्यान था। विषय "आर्य्य-जीवन" था। इस व्याख्यान में आर्य-जीवन का चित्र खींचते हुए

मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, हकीकतराय, पूर्ण भक्तादि के दृष्टान्तों को श्रोता-गण के आगे ऐसी योग्यता से रक्खा कि मृत प्राणियों में भी जीवन पड़ गया और पत्थर दिलों को भी मोम बना आठ-आठ आँसू रुलाया।

२१ नवम्बर को बन्नू से चल कर डेराइस्माइलखाँ के रास्ते लाहौर आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिये प्रस्थान किया। मालूम होता है कि २२ नवम्बर की रात को दरियाखाँ रेलवे स्टेशन से लाला मूसा के लिये चल दिये जहाँ २३ नवम्बर के प्रातःकाल पहुँच गये। लाला मूसा में कुछ देर तक ठहरना पड़ता है क्योंकि रावलपिण्डी से डाक यहाँ १२ बजे के पश्चात् पहुँचती है।

पण्डित लेखराम अपना समय व्यर्थ गंवाने वाले न थे इसलिये स्टेशन के किसी बाबू से समाचार-पत्र माँगे। जो पत्र बाबू ने दिये उन्हीं में ७ नवम्बर का 'मित्र-विलास' मिल गया। उसी समय डायरी में नोट कर लिया—"१० अक्टूबर के मेसेन्जर में लिखा है कि परोपकारिणी-सभा सत्यार्थ-प्रकाश में से वह लेख जो बाबा नानक की बाबत है निकाल देवें। देखना है कि समाज इस को क्या समझती है" (मित्रविलास)—

उत्तर—परोपकारिणी-सभा इसको नहीं निकाल सकती। समाज इसको स्वामी जी की तहरीर (लेख) समझता है और जब तक उसकी गलती मालूम न हो बिल्कुल सही समझता है। और गलती मालूम हो जाने पर आर्य्य-समाज नियम ४ के अनुसार गलती कबूल (भूल स्वीकार) करने को तैयार है। लेख-राम आर्य्य-मुसाफिर बकलमखुद—मुफस्सिल जवाब दिया जायगा। २३ नवम्बर, १८९४, रेलवे स्टेशन लालामूसा।"

धुन यह लगी रहती थी कि आर्य्य-समाज पर कोई आक्षेप ऐसा न रहे जिसका उचित उत्तर न दिया जाय। इन्हीं दिनों दक्षिण-हैदराबाद में निजाम की पुलिस ने पण्डित गोकुलप्रसाद पौराणिक के मुकाबिले में व्याख्यान देने वाले पण्डित बालकृष्ण शास्त्री आर्योपदेशक तथा ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी को राज से बाहर कर दिया था। उसका हाल मित्रविलास में पढ़ कर नोट कर लिया कि उसके विषय में आन्दोलन करके आर्य्यसमाज की रक्षा के लिए लेख लिखेंगे।

२३ नवम्बर की डाक में लाहौर पहुँच कर पण्डित लेखराम जी ने नगर-कीर्तन की शोभा अवलोकन की और २४ नवम्बर को आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में मध्याह्नोत्तर के समय, पौराणिक सभा की ओर से पण्डित गोपीनाथ, गोपाल शास्त्री और एक साधु को लेकर आये थे। पौराणिकों की वक्तृताओं का जिक्र करके सद्धर्म-प्रचारक में लिखा है—"किन्तु जब आर्य्य-मुनि जी ने दोनों (सनातनी) बोलने वालों का परस्पर विरोध, अपनी प्रबल युक्तियों से, दिखलाया और आर्य्यपथिक ने वेद प्रमाणों से सनातनियों के प्रमाणों और युक्तियों को खण्ड-खण्ड कर दिया तो फिर जो प्रभाव श्रोता-गण पर पड़ा उस का अनुमान वही लोग कर सकते हैं जिन्होंने इन दोनों उपदेशकों के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ देखे हैं।"

२५ नवम्बर को अन्तिम व्याख्यान पण्डित लेखराम का था। समय केवल एक घण्टा दिया गया था परन्तु जब आर्य्य-पथिक आर्य्य-समाज के नियमों की व्याख्या करने लगे तो फिर श्रोतागण भला कब हिलने का नाम लेते। अढ़ाई घण्टे तक बराबर श्रोतागण लिखित चित्रवत् बैठे रहे। यदि वक्ता एक घण्टा और बोलते तब भी श्रोतागण बैठे रहने को तैयार थे।

लाहौर से आर्य्य-पथिक अपने जन्मदाता आर्य्यसमाज पेशावर में गये और ३ से ५ दिसम्बर, १८९४ तक बराबर व्याख्यान दिये। ६ दिसम्बर को रावलपिंडी उतरे, परन्तु व्याख्यान का प्रबन्ध न होने के कारण अपने निवास-स्थान कहूटा को चले गये। इस बार अपने ग्राम में लाभचन्द्र भजनीक को भी साथ ले गये और दो दिनों तक वैदिक-धर्म का खूब प्रचार हुआ। वहाँ से रास्ते में गूजर खाँ, चकवालादि स्थानों में वैदिक धर्म का डङ्का बजाते हुए २५ दिसम्बर, सन् १८९४ को जालन्धर आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव में आकर सम्मिलित हुए।

पंडित लेखराम चकवाल में थे जब ईसाई अखबार "नूरअफशां" में किसी का छपवाया हुआ लेख देखा जिसमें लिखा था कि पण्डित लेखराम ने एक बार गुजरात में ईसा के विचित्र जन्म का पता वेदों से दिया था। आर्य्य-पथिक ने वहीं से उस लेख का खण्डन सद्धर्म्म-प्रचारक के लिए भेजा, जो १५ पौष १९५१ के अङ्क में छपा था।

जालन्धर आर्य्यसमाज के इस वार्षिकोत्सव में पण्डित लेखराम का पहला व्याख्यान स्मरणीय है। विषय "धर्म परीक्षा की कसौटी" था जिसे आर्य्य-पथिक ने ऐसा प्रभावशाली बनाया कि सद्धर्म प्रचारक के संवाददाता के शब्दों में — "एक साधु, जो आगरे के राय शालिग्राम का चेला हो चुका था, और राधा स्वामी के जाप में निमग्न था, व्याकुल हुआ। पण्डित (लेखराम) जी से फिर मिला और अन्त को वैदिक धर्म की शरण में आकर उसने राय शालिग्राम को पोस्टकार्ड भेज दिया कि पण्डित लेखराम का व्याख्यान सुनकर उसे राधा स्वामी मत पर विश्वास नहीं रहा।"

लाहौर की स्थिति

स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र की पूर्ति के लिए आवश्यक यह था कि पण्डित लेखराम बाहर के आन्दोलन के पश्चात् किसी विशेष स्थान में बैठ कर काम करें, परन्तु एक ओर पण्डित लेखराम का अपना धार्मिक उत्साह और दूसरी ओर आर्य्य जनता की आवश्यकताएं उनको एक स्थान में बैठने न देती थीं। आर्य्य-प्रतिनिधि सभा ने कई बार विशेष नियम बना बना कर पंडित लेखराम को दिये। परन्तु आर्य्य-पथिक के धार्मिक जोश को ठण्डा करने के लिए कोई भी नियम पर्याप्त न थे। जीवन चरित्र का काम करते हुए उन को बुलाने के लिए यह लिख देना काफी था कि एक आर्य्य-जातिस्थ पुरुष मुसलमान होने वाला है वा किसी महम्मदी प्रचारक के साथ शास्त्रार्थ की सम्भावना है; और फिर यदि सभा की ओर से आक्षेप होता तो पण्डित होता तो पण्डित लेखराम का यह उत्तर, कि शास्त्रार्थ के दिनों का वेतन काट लो, सभा के अधिकारियों को चुप कराने का अपूर्व साधन था। मेरे पास पंडित लेखराम को इसीलिए रक्खा गया था कि जमा किये वृत्तान्त को कैसे क्रम से ठीक करके छपवाने का प्रबन्ध करूँ। परन्तु यह इकट्ठा किया हुआ मसाला समझ में नहीं आ सकता था जब तक पंडित लेखराम ही उसे नोटों से साहित्य का रूप न देते, और मैं आर्य्य-पथिक को प्रचार के लिए भेजने पर मजबूर था। जब मैंने सभा में रिपोर्ट कर दी कि पड़ताल का कार्य्य किसी अन्य सज्जन के सुपुर्द हो, तो सर्व पत्रादि राय ठाकुरदत्त जी के पास भेजे गये। परन्तु जब राय साहेब ने भी इन पत्रों को अभी अपूर्ण बतलाया तो फिर यह निश्चय हुआ कि

लाहौर में स्थित होकर पण्डित लेखराम ही ऋषि का जीवन वृत्तान्त ठीक करके छपवाना आरम्भ कर दें।

उपरोक्त निश्चय के अनुसार पं० लेखराम जी ने लाला जीवनदास पेन्शनर के मकान में रहने का प्रबन्ध किया और अपनी धर्म-पत्नी को लाहौर लाने के लिये जनवरी, १८९५ के मध्य भाग में घर की ओर चल दिये। मार्ग में गुजरात के आर्यों के निवेदन पर ठहर कर एक भूले भाई को वैदिक धर्म की सच्चाइयों का उपदेश करके मुसलमान होने से बचाया। १८ जनवरी को लालामूसा में व्याख्यान देकर १९ जनवरी को गुजरात में "सद्धर्म की प्राप्ति" विषय पर एक व्याख्यान दिया और फिर घर जाकर अपनी धर्म-पत्नी जी को साथ ले सीधे लाहौर में उपस्थित हुए।

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम जी की प्रेरणा पर जो मैंने वेद भाष्य की रक्षा विषयक लेख प्रचारक में लिखे थे, उनका परिणाम निकल आया। यह पण्डित लेखराम ने ही पता लगाया था कि ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य का आर्य्य भाषा में अनुवाद करते हुए ब्राह्मण कुलोत्पन्न पण्डित अपने सिद्धान्त बीच में घुसेड़ कर भाष्य को संदिग्ध बना रहे हैं। परोपकारिणी सभा ने यह निश्चय मुद्रित कराया कि "महर्षि दयानन्द कृत पुस्तकों के शोधने के लिये पण्डित लेखराम जी को लिखा जावे कि वह अशुद्धियाँ छाँट कर वैदिक यन्त्रालय के अधिष्ठाता के पास लिख भेजें।

लाहौर में स्थित होकर पण्डित लेखराम ने जीवन चरित्र का लेख कातिब (लेखक) के हाथ में देना शुरू तो कर दिया परन्तु फिर भी एक ओर लगकर काम करना उन्हें वहाँ भी न मिला। ९ फरवरी १८९५ के दिन हम उन्हें अपने देश की आवश्यकता पर मान्टगुमरी में व्याख्यान देते पाते हैं और फिर १० फरवरी को गुजरांवाला में "हमारी मौजूदा तहकीकात" पर प्रकाश डालते देखते हैं। कारण वही मांस-भक्षण का झगड़ा था। जहाँ कहीं कालिज दल के आदमी समाज को अपनी ओर खींचने जाते वहीं पण्डित लेखराम को भेजना पड़ता।

परन्तु केवल सभा के अधिकारी ही ऋषि जीवन की तैयारी में बाधा डालने वाले नहीं समझे जा सकते; स्वयं पण्डित लेखराम का भी इसमें बड़ा भारी हाथ होता था। मान्टगुमरी और गुजरांवाला जाने का हाल मुझे भेजते हुए

आर्यपथिक अपने १४ फरवरी, १८९५ के पत्र में लिखते हैं—"अब भिवाना, स्यालकोट, करांची, होशियारपुर के जलसे समीप आ गये। आपने क्या सलाह की है। आप समेत ८ महाशय जाने वाले हैं। उनमें से ४ स्यालकोट और ४ भिवानी चले जावें। मैं और पण्डित कृपाराम जी दोनों लाभचन्द्र भजनीक) समेत, होशियारपुर को भुगत लेंगे। बतलाइये अब क्या आज्ञा है? जिन जिनको जिस स्थान में भेजना है, आप भली प्रकार सोच विचार कर, शीघ्र सबको सूचित कर दीजिये जिससे ठीक समय पर काम हो।"

ऊपर का उद्धृत लेख स्पष्ट सिद्ध करता है कि जिस प्रकार पण्डित लेखराम पेशावर आर्य-समाज के प्रबन्धकर्त्ता बने हुए थे उससे भी बढ़ कर उन्हें दिन-रात आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की चिन्ता रहती थी; परन्तु यश और कीर्ति का लेशमात्र भी लालच उन्हें न था। होशियारपुर न जाकर २३, २४ फरवरी को भिवानी आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए जहाँ व्याख्यानों के अतिरिक्त धर्म-चर्चा में भी विशेष भाग लिया।

भिवाना से पण्डित लेखराम सीधे करनाल आर्यसमाज के जलसे पर पहुँचे और उसी स्थान में उनके साथ मै भी शामिल होकर २७ से २९ मार्च तक काम करता रहा। शङ्का-समाधान का तो अधिक बोझ पण्डित लेखराम पर रहता ही था, परन्तु करनाल के इस वार्षिकोत्सव पर जो दो व्याख्यान उन्होंने दिये उन्होंने हिन्दुओं के मुर्दा तनों में भी जीवन फूँक दिया। पतितों के उद्धार और आर्य-जाति के भविष्य पर ऐसे बल-वर्धक व्याख्यान मैंने पहले नहीं सुने थे।

इसी वर्ष चिरकाल से सोया हुआ दिल्ली आर्य समाज जाग उठा था और ३० मार्च, १८९५ से उनके वार्षिकोत्सव का आरम्भ था। इस वार्षिकोत्सव में भी पण्डित लेखराम मेरे साथ ही करनाल से चलकर सम्मिलित हुए थे। दिल्ली नगर में हमारा पहला नगरकीर्तन था इसलिये दिल्ली वाले हमारी भजन-मण्डलियों को भी तमाशे वाले का विज्ञापन समझे। तब हमारे उपदेशकों ने भजनों के पश्चात् ऊँचे मूढ़ों पर खड़े होकर व्याख्यान आरम्भ कर दिये। इस नगर प्रचार में पण्डित लेखराम ने बड़ा काम किया। जब चाँदनी चौक में छुन्नामल वालों के मकान के नीचे पण्डित लेखराम ने अपनी वक्तृता आरम्भ की तो दो हज़ार से कम की भीड़-भाड़ न थी।

पण्डित लेखराम के व्याख्यानों में महम्मदी लोग बहुत आते थे। बाहर से चाहे कुछ भाव लेकर आते परन्तु आर्य्य-पथिक की आस्तिकता पूर्ण युक्तियाँ सुनकर "सुभान-अल्ला" और "बारकअल्ला" के ही 'नारे बलन्द" होते और दाढ़ी वाले सिर और गर्दनें चारों ओर हिलती दिखाई देतीं।

अभी लाहौर पहुँच कर जीवन-चरित्र का कार्य फिर से आरम्भ किया ही था कि सियालकोट से एक सिक्ख रिसाले के सवारों के डांवाडोल होने के सभाचार पहुँचे। पण्डित लेखराम उसी समय सियालकोट पहुँचे और बड़े प्रेम से अपने सिक्ख भाइयों को धर्म का महत्व समझाया। तीन दिन तक महम्मदी मत खण्डन में आर्य्य-पथिक के प्रबल व्याख्यान होते रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि सैंकड़ों खालसे मुसलमान होने से बचे गये।

१३ अप्रैल, १८९५ के प्रातःकाल मेरे साथ पण्डित लेखराम जी मालेर-कोटला आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। यहाँ की कुछ मनोरंजक घटनायें वर्णन करने के योग्य हैं। (१) मुसलमानी रियासत होने के कारण पण्डित लेखराम के पहुँचने की धूम मच गई। मध्यान्होत्तर का समय धर्म-चर्चा के लिए निश्चित था। एक सभ्य मुसलमान सज्जन मुन्शी अब्दुल्लतीफ नामी ने पुनर्जन्म पर कुछ प्रश्न किये, जिनका उत्तर पण्डित कृपाराम देते रहे, परन्तु मुन्शीसाहब प्रश्नोत्तर के पश्चात् केवल यह कह देते कि उनकी तसल्ली नहीं हुई। जब तीन चार बार ऐसा ही हुआ तो मैंने पण्डित कृपाराम जी का आशय उनको समझाना चाहा। इस पर वह बहुत बिगड़े। फिर भी जब दो तीन बार मैं प्रबन्ध के लिये उठा तो मुन्शी साहब ने रोक कर कहा—"आप कौन हैं जो बार-बार प्रबन्ध के लिये उठते हैं।" मैंने उत्तर दिया कि मैं स्थानिक प्रधान की आज्ञा से प्रबन्ध कर रहा हूँ। जब इस पर मुन्शी साहब को विश्वास न आया तो प्रधान स्थानीय आर्य्यसमाज ने मेरे कथन का समर्थन किया और मैंने कहा कि मैं पञ्जाब आर्य्य प्रतिनिधि सभा का भी प्रधान हूँ इसलिये प्रबन्ध में हाथ दे सकता हूँ। मुन्शी साहब इस पर बोले—"आपका नाम किसी प्रतिनिधि के ताल्लुक (सम्बन्ध) में किसी अखबार में, खसूसियत से (विशेषतः) सद्धर्म्म-प्रचारक में भी, कभी नहीं पढ़ा। आप प्रतिनिधि के हरगिज प्रधान नहीं हैं।" तब तो मुझे कुछ असलियत खटकी और मैंने पूछा—"क्या आप मेरा

नाम भी जानते हैं ?" मुन्शी अबदुल्लतीफ़ साहब ने फरमाया—"खूब जानता हूँ। आप पण्डत (पण्डित) लेखराम साहेब हैं।" इस पर श्रोतागण खिलखिला कर हँस पड़े और मुझे पता लगा कि पञ्जाबी लोकोक्ति ठीक है—

"नामा-शाह खट्ट-खाय, बदनाम चोर मारा जाय।"

पण्डित लेखाराम के व्याख्यान तो मुन्शी साहब ने सुने ही, परन्तु मेरे व्याख्यान के पश्चात् मेरे हाथ में ५) इसलिये दिये कि मैं जिस शुभकार्य्य में उसे व्यय करना चाहूँ कर दूँ। (२) दूसरी मनोरंजक घटना रात को हुई। मैं दस बारह दिनों से दिन-रात काम करता आया था, इसलिये एकान्त में जाकर सो गया। एक घण्टे के पश्चात् ही दो भाई मेरे पैर दबाने लगे। मैं उठ खड़ा हुआ। क्षमा माँग कर उन भाइयों ने कहा कि अनर्थ होने लगा है, शीघ्र चलिये। मुसलमानी रियासत और हमारे मना करते-करते पण्डित लेखराम ने मुसलमानों से मुबाहसा शुरू कर दिया है! मैं भागा हुआ पण्डित लेखराम की ओर चल दिया। वहाँ क्या देखता हूँ कि चार पाँच मुसलमानों के बीच में बैठे पण्डित लेखराम ने एक मुसलमान युवक का हाथ अपने हाथ में लिया हुआ है और दूसरा हाथ उसकी जांघ पर रख कर उसे प्रेम से कुछ समझा रहे हैं, और युवक कह रहा है—"यह हवाला तो, पण्डित जी, आपने कुरान शरीफ में से निकाल ही दिया। अब तो अपने मौलवी साहब से फिर पूछ कर आऊंगा।" परन्तु पण्डित लेखराम ऐसी जल्दी कब जाने देते थे। बोले—'मैं तो मुसाफिर हूँ, न जाने फिर मिलना हो वा नहीं। मेरा आशय तो सुन लो।' फिर आध घंटे तक वैदिक धर्म की श्रेष्ठता जतला कर उन सब मुसलमान भाइयों को बड़े प्रेम से विदा किया। जब मुसलमान विदा हो चुके, और पण्डित लेखराम को मेरे आने का कारण ज्ञात हुआ, तो स्थानीय आर्य्य-समाजियों से कहने लगे—"तुम बड़े बोदे हो। क्या मैं तुमसों के भरोसे पर धर्म का प्रचार कर रहा हूँ? ईश्वर जानता है, तुमसे अविश्वासी नास्तिकों से तो निमाजी मुसलमान हजार दर्जे बेहतर हैं।

(३) फिर जब मैं १४ अप्रैल की रात को शिक्रम में बैठने लगा तो तीसरी मनोरंजक घटना हुई। आर्य्य पुरुष चाहते थे कि पंडित लेखराम मेरे साथ ही विदा हो जायें, इसलिए मेरी शिक्रम को ठहरा लिया (क्योंकि उन

दिनों मालेरकोटले को रेल नहीं जाती थी) और पंडित लेखराम को कहा कि मैं उनके लिये ठहरा हुआ हूँ। आर्य्य-पथिक विना बिस्तर आदि लिये आये और पूछा—"क्या आप मुझे जबरदस्ती साथ ले जाना चाहते हैं।" स्थानीय अधिकारियों की दशा का ध्यान करके मैंने कहा—"चलिये तो अच्छा ही है।" पंडित जी के लब फड़कने लगे—"मैं सब कुछ समझ गया हूँ। आप मुझे आज से सभा का नौकर न समझिये। ईश्वर जानता है, ये लोग आर्य नहीं हैं। क्या मैं इन बुजदिलों को खुश करने के लिए मैदान से भाग जाऊँ। मैं सराय में डेरा करके यहीं रहूँगा" मैं तो खिलखिला कर हँसा और पण्डित जी को नमस्ते कह कर शिकम चलवादी और मालेरकोटले के आर्यसमाजी लज्जित होकर आर्य-पथिक की सेवा शुश्रूषा में सन्नद्ध हुए।

मालेरकोटले से लौटने के पश्चात् पंडित लेखराम के रोपड़ आर्यसमाज के जलसे में २७ अप्रैल को, सम्मिलित होने का पता लगता है, जहाँ उनके दो व्याख्यान हुए थे।

इन्हीं दिनों प्रीतमदेव शर्मा की न्याई उदासी साधु बालक राम ने भी पञ्जाब का दौरा शुरू किया था और जिस प्रकार प्रीतमदेव केशवानन्दादि ने स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज को गालियाँ देना ही धन सञ्चय करने का साधन समझा था वैसा ही बालकराम ने भी अमल शुरू किया। इसलिये पंडित लेखराम को इसके मुकाबिले में कई जगह जाना पड़ा था। मास मई, १८९५ के आरम्भ में उदासी बालकराम भेरे में था, इसलिये पंडित लेखराम ने वहाँ पहुँच कर बराबर तीन व्याख्यान दिये। यद्यपि शास्त्रार्थ के लिये बालकराम जी तैयार न हुए तथापि भेरा आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव २४, २५, २६ मई १८९५ के लिए नियत हो गया।

पण्डित लेखराम के घर में सन्तानोत्पत्ति की आशा थी, इसलिए वह १५ मई, १८९५ को लाहौर से अपनी धर्म-पत्नी को साथ लेकर अपने घर कहूटे में पहुँचे, जहां १८ मई शनिवार के दिन प्रातः ९ और १० बजे के बीच में उनके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। बच्चे का नाम-करण संस्कार वैदिक रीति से करके, २२मई को आर्य्य-पथिक ने फिर यात्रा आरम्भ कर दी। ३६ वर्ष की आयु में विवाह करके जब पुत्र उत्पन्न हो तो उसके आनन्द में एक साधारण पुरुष सब

कुछ भूल जाता है, परन्तु यहाँ तो अपने पुत्र द्वारा मन्त्री जी से प्रतिज्ञा कर चुके थे कि गूजरखां और तक्षा में विशेष कार्य्यों के लिए २३ और २४ मई को ठहरते हुए २५ को भेरा आर्य्य-समाज के उत्सव में सम्मिलित हो जायेंगे। और ऐसा ही किया भी।

भेरा आर्य्य-समाज के इस वार्षिकोत्सव में मै भी सम्मिलित था। पण्डित लेखराम जी अपने पुरुषार्थ को सफल देखकर गद्गद् हो रहे थे। साधु बालकराम को भी निमन्त्रण भेजा गया परन्तु वह आकर अपनी अप्रतिष्ठा कब कराता था? यहाँ आपके एक व्याख्यान का विषय था "आजकल के नौजवान (युवक) और उनकी हिम्मत।" इस व्याख्यान मे आर्य्य-पथिक ने कहा—"जो युवक व्यायाम नहीं करते वे खाकर कुछ पचा नहीं सकते और जब काफी भोजन नहीं खाते तो बल कहाँ से आवे। देखो हस्पताल के बीमारों की खुराक गवर्नमेन्ट की ओर से यह नियत है— आटा आधा सेर, दाल एक पाव, घी एक छटांक, चावल एक पाव। हमारे युवक हस्पताल के बीमारों से भी बदतर हैं कि दो तीन फुलकियाँ खाकर उठ खड़े होते हैं।" पण्डित लेखराम जी के व्याख्यान का यह भाग उनके सब साथियों और नगर निवासियों को भी कण्ठस्थ हो गया था। २७ के प्रातः हम सब भेरा से चले, और ७।१२ बजे लालामूसा में पहुँचकर स्नान सन्ध्यादि सारी जमात ने किया। लगभग ६ वा ७ उपदेशक थे। भोजन बनवाने का काम पण्डित लेखराम ने अपने जिम्मे लिया जब भाजी आदि के साथ आटे की पूरियाँ लाकर रक्खी गई तो आध सेर आटे वाला मामला सबको हसाता रहा। भोजन के समय आर्य्य-पथिक सबको टोकते जाते थे परन्तु मेरे साथ उनका साम्मुख्य हो गया। दो पुरियाँ उन्हें दी जाती तो दो ही मुझे। इस प्रकार जब सब हार गये और हम दोनों भी सत्रह सत्रह पूरियाँ खा चुके तो पण्डित जी ने हाथ धो लिए और मैंने दो और लेकर बस की। तब पण्डित जी बोले—"लालाजी! मैं तो आपको रईसों में ही शुमार करता था। आपने तो गजब कर दिया।"

पण्डित लेखराम वैसे तो बड़ी टेढ़ी प्रकृति के दिखाई देते थे, थे परन्तु बड़े ही हँस मुख और सरल हृदय; वह मक्कारी और झूठ को सहन नहीं कर

सकते थे। भोजन के पश्चात् पुत्रोत्पत्ति के उपलक्ष्य में पण्डित लेखराम से सह-भोज मांगा गया। पण्डित जी ने उस समय के सारे भोजन का व्यय अपने पास से देकर सबको प्रसन्न कर दिया।

भेरे से लौटकर पण्डित लेखराम ने अभी जीवन चरित्र के काम को हाथ ही लगाया था कि फिर उनके लिए मांग क्वेटे से आ। इधर तो यह हाल और उधर जीवन चरित्र का मसाला पड़ताल कराने के लिए अन्तरङ्ग सभा ने प्रत्येक लेख की तीन प्रतियाँ तय्यार करने का प्रस्ताव स्वीकार किया पण्डित लेखराम भी ऐसी अवस्था में बड़े तङ्ग आ जाते थे। सभा के मन्त्री के नाम जो पत्र १७ मई को कहूटे से लिखा उसमें दर्ज था—"आर्य्य-प्रतिनिधि-सभा के दो अधिवेशनों में लाला मुन्शीराम के, विशेष आवश्यकताओं के कारण, न सम्मिलित होने से काम पूर्ण न हुआ। जो रेजील्यूशन पास हुए है मै उनके साथ सहमत नहीं हूँ। तीन कापियाँ कराने में दो तीन सौ रुपये मुफ्त में फालतू खर्च होंगे·····एक कापी का होना तो जरूरी है किन्तु एक से अधिक नहीं, उससे केवल व्यय ही बढ़ेगा। आप जानते हैं कि मैं यात्रा में, और विशेषतः उपदेश के लिए यात्रा में, जीवन चरित्र का काम बिल्कुल नहीं कर सकता। और यात्रा की असावधानता में पत्रों के गुम हो जाने का भी सन्देह रहता है। अब मैं सब पत्र लाला जीवनदास के मकान पर ताले मे बन्द कर आया हूँ, साथ नहीं लाया।"

आर्य्य-पथिक के ऊपर लिखित दृढ़ प्रतिबेध करने पर भी उन्हें क्वेटे की ओर जाने की आज्ञा मिली। तदनुसार वह ८ जून १८९५ को लाहौर से चल कर मान्टगुमरी पहुँचे जहाँ उन्होंने दो व्याख्यान दिये। १३ जून को सोबी पहुँचकर व्याख्यान दिया और १४ को क्वेटे पहुँच गये। १६ और १८ जून को दो व्याख्यान देने के पश्चात् जुलाई के अन्तिम सप्ताह में आर्य्य समाज का वार्षिकोत्सव रखवाया।

इन्हीं दिनों मेरठ से पण्डित लेखराम को एक पत्र, जालन्धर में घूमता हुआ, क्वेटे में पहुँचा जिसमें लिखा था कि एक हिन्दू सभ्य मुसलमान हो चुका है और दूसरा होने वाला है—और पण्डित लेखराम से सहायता चाही थी। क्वेटे से बिना आज्ञा मेरठ जाना कठिन था परन्तु पण्डित लेखराम के अन्दर

कैसा आत्मा काम करता था उसका पता उनके पत्र से पता लगता है –"लाला मुन्शीराम जी को तार दी है कि इसका स्वयं प्रबन्ध करें या जैसी आज्ञा हो लिखें तो उसका पालन करूँगा। आप भी उनसे पूछ लें कि क्या बन्दोबस्त किया।"

इधर तो आर्य्य समाज क्वेटा का वार्षिकोत्सव नियत कराया और उससे पहले धर्म-प्रचार का सिलसिला जमाया और इधर घर से बड़ा शोकजनक समाचार मिला। जब पण्डित लेखराम घर पर छुट्टी लेकर गये थे उन्हीं दिनों उनका भाई, तोताराम, बीमारी के बिस्तर से उठा था, परन्तु निर्बल अधिक था। क्वेटा में चाचा का पत्र पहुँचा कि १२ जून को भाई का देहान्त हो गया। इस पर १ जुलाई को जो पत्र, क्वेटे से, पंडित लेखराम ने सभा के मन्त्री को लिखा वह उनके मानसिक भावों को बड़ी उत्तमता से प्रकट करता है ?—मेरा छोटा भाई तोताराम १२ जून को मर गया परन्तु घर वालों ने मुझे कुछ समय तक सूचित न किया। कल पेशावर से मेरे चाचा का पत्र आया जिससे हाल मालूम हुआ। हैरान हूँ कि क्या करूँ। इधर समाज का काम, उधर गृह की आपत्ति, हैरानी पर हैरानी है। यदि यहाँ से काम छोड़कर चला जाता हूँ तो अपने समाज को हानि पहुँचती है और वहाँ भी बहुत सा हर्ज है। लाचार मैंने आज ही घर पत्र लिखा है कि यदि वे मुझे आज्ञा दें तो जुलाई के अन्त तक क्वेटे रहूँ, नहीं तो पत्र आने पर सूचना दूंगा।"

मालूम होता है कि घरवालों ने, पंडित लेखराम का अपनी धार्मिक संस्था से असीम प्रेम देखकर, फिर उन्हें तंग नहीं किया क्योंकि क्वेटे में दो और व्याख्यान देकर हम उन्हें बलूचिस्तान का दौरा करते पाते हैं। २ जुलाई १८९५ को क्वेटे से चलकर बोलान, दोज़ान, कोलपुर, हिरक चतरजई, पनीरबन्द आदि में प्रचार और वेद प्रचार निधि के लिए धन एकत्र, करते क्वेटे में लौट आये। फिर क्वेटा आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव से पहले दो व्याख्यान देकर नगर निवासियों को तैयार किया और वार्षिकोत्सव में दो व्याख्यान देकर लौट आये।

परन्तु क्या पंडित लेखराम भाई के मरने से १ महीना १० दिनों के पश्चात् घर लौटे ? दीना नगर से तार आया था कि मुसलमानों के साथ शास्त्रार्थ ठन गया है, तब आर्य्य-पथिक घर कैसे जाते ? ३० जुलाई को क्वेटे से चल

कर २१ जुलाई को रुक जङ्कशन स्टेशन पर प्रातः दस बजे "ईश्वर प्राप्ति" विषय पर व्याख्यान दिया और सीधे चलकर प्रथम अगस्त की रात को दीना-नगर रेलवे स्टेशन पर पहुँच गये। यहाँ मौलवी अकबर अली और मौलवी चिरागुद्दीन महम्मदी मत के प्रचारक, पहले से जमे हुए थे, परन्तु शास्त्रार्थ के लिए सामने न आये। तब दो अगस्त से आरम्भ करके मौलवियों के मुकाबिले में तीन जबरदस्त व्याख्यान दिये, और जनता के आग्रह पर फिर तीन दिन और ठहरकर "वैदिक धर्म की श्रेष्ठता' "सन्ध्या की आवश्यकता" और "सच्चाई का मजबूत चट्टान" विषयों पर बड़े सारगर्भित व्याख्यान दिये। इनका प्रभाव उस समय के स्थानिक मन्त्री जी इस प्रचार वर्णन करते हैं— "किसी वार्षिकोत्सव में इतनी जनसंख्या उपस्थित नहीं हुई और पंडित (लेख-राम) जी के व्याख्यानों से लोगों के हृदय में जो सहानुभूति आर्य्य-समाज के साथ उत्पन्न हुई है, उसका भी पहला ही अवसर है। पंडित जी के व्याख्यानों के पश्चात् यहां सन्ध्या पुस्तकों की बड़ी माँग हो रही है। जहाँ तक मेरा ख्याल है कोई भी आर्य्य समाज का मेम्बर और धर्मात्मा हिन्दू न होगा जो अब भी दो घन्टे व्यय करके दो काल सन्ध्योपासना न करेगा।"

८ अगस्त को अमृतसर पहुँचकर आर्य-पथिक ने "धर्म के मजबूत चट्टान" विषय पर व्याख्यान दिया और ९ अगस्त को "सत्य के स्रोत" विषय पर। यहाँ पर ही मुरादाबाद की तार के साथ प्रधान आर्य-प्रतिनिधि की भी आज्ञा पहुँची कि मुरादाबाद में जाकर एक भाई को ईसाई मत के फन्दे से बचा लाइये। आर्य-पथिक विना किसी ननु नच के मुरादाबाद चल दिये। खन्ना (जिला लुधियाना) का श्रीराम सारस्वत ब्राह्मण ईसाई हो चुका था जिसको वैदिक धर्म का अनुयायी बनाया और प्रायश्चित्त करने के पश्चात् नगर कीर्तन करते हुए उसे आर्यसमाज मन्दिर मुरादाबाद में लाकर ५०० पुरुषों की उप-स्थिति में शुद्ध किया, और सब भाइयों ने श्रीराम के साथ खान-पान का व्यवहार आरम्भ कर दिया। उन दिनों सनातन धर्म सभा में आलाराम सागर के लोगों को आर्यसमाज के विरुद्ध भड़का रहा था परन्तु ११ से १५ अगस्त के बीच प्रबल व्याख्यान देकर आर्य-पथिक ने हिन्दू मात्र को अपने साथ कर लिया और फिर अम्बाले का तार आने पर वहाँ को चल दिये। यहाँ पर ईसाइयों ने

कुछ शोर मचाया हुआ था जिसके मुकाबिले में पंडित लेखराम जी के व्याख्यान बड़े प्रभावशाली हुए और सर्वसाधारण को ईसाई मत की निर्बलताओं का परिज्ञान हुआ।

अम्बाला छावनी में जिस काम के लिये आये थे उसे करके २३ अगस्त को शिमला आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। शिमला में पंडित लेखराम के तीन व्याख्यान हुए। जिनमें से अन्तिम व्याख्यान टाउन हाल (Town Hall) में आर्यसमाज के नियमों पर हुआ। इस व्याख्यान से प्रभावित होकर बहुत से नये सज्जन आर्यसमाज के सभासद तथा सहायक बने।

शिमले से लौटते हुए पडित लेखराम को वर्षा में भी भीगते-भीगते आना पड़ा और अम्बाला में भी बादल न खुले। वहाँ अभी कपड़े सुखाने का बंदोबस्त करने ही लगे थे और एक व्याख्यान भी दे चुके थे कि मेरा तार पहुँचा और आर्य-पथिक सीधे जालन्धर पहुँच गये। तीसरे पहर रेल से उतरते ही मेरे पास आये। मैंने उनको कष्ट देने का कारण बतलाया। धर्मशाला पर्वत के आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव था और उसी समय कालिज पार्टी ने भी उत्सव मनाना निश्चित किया। जहाँ उधर से बड़े-बड़े प्रसिद्ध उपदेशक, लीडर और राय साहबान जाने वाले थे वहाँ हमारी ओर से लाभचन्द्र भजनीक को लेकर अकेले पंडित कृपाराम जी पहुँचे हुए थे। उस स्थान में पंडित लेखराम को भेजने का विचार था। २९ अगस्त को पंडित लेखराम मेरे पास पहुँचे और धर्मशाला में ३१ अगस्त को नगर कीर्तन था; यदि दूसरे दिन प्रातःकाल ही चल देते तो धर्मशाला आर्यसमाज के सभासदों के डांवाडोल हृदयों को शांति मिल सकती थी।

मेरी सारी कहानी सुनकर पंडित लेखराम बोले "यह देखिये! लगातार सफर में सारे कपड़े मैले हो गये, कहीं धुलाने का समय नहीं मिला। फिर शिमले से आते हुए उन मैले कपड़ों में से एक भी सूखा नहीं बचा। मुझे परसों से ज्वर आता है और जुकाम साथ है। बतलाइये। मैं जाने की अवस्था में हूँ?" मेरी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और मैंने कहा—"पंडित जी! आप अब आराम कीजिये, धर्मशाला का विचार छोड़ दीजिये। वहाँ का भुगतान हो जायगा।" इतना कहकर मैंने पंडित जी को उनके निश्चित कमरे में उतारा

और कपड़े सुखाने के लिये अंगीठी जलवा दी, क्योंकि उन दिनों व्यापक झड़ी लगी हुई थी। पण्डित लेखराम को भोजन कराके मैं अपने काम में लग गया और फिर उस रात उन्हें न मिला।

दूसरे दिन प्रातः मुकदमों का प्रबन्ध करके मैं कचहरी जाने की तैयारी करने लगा था कि पंडित लेखराम कपड़ों का बैग बाहर रख कर मेरे बरामदे में पहुँचे और मुझे अन्दर से बुलवाया। जब मैं बाहर पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि पाजामा, कोट पहिने पगड़ी का शमला छोड़े कमर की पेटी हाथ में लिये आर्य-पथिक यात्रा को तैयार खड़े हैं। मुझे देखते ही बोले—"लाला जी! २०) रुपये मार्ग व्यय के लिए मंगा दीजिये और अपने दो नये कुर्ते भी। ऊपरी सफाई की मुझे परवा नहीं लेकिन शरीर में सटा हुआ तो शुद्ध वस्त्र ही होना चाहिये।"

मैं आर्य-पथिक की ओर आश्चर्य से देखने लगा और पूछा "क्या घर से कोई तार आया है।" उत्तर मिला—"घर की मुझे कम परवा है। वहीं धर्म-शाला जाता हूँ। क्या किया जाय। जाना ही पड़ेगा।" मैंने बतलाया कि मध्या-ह्नोत्तर की रेल में मैं चला जाऊँगा वह कष्ट न उठावें। पंडित लेखराम, प्रसिद्ध कटु भाषी पंडित लेखराम, प्रेम से सनी हुई वाणी में बोले—'लाला जी! आप का यहाँ से हिलना बड़ा हानिकारक होगा। आपके ही बल से तो हम सब काम करते हैं। यदि ऐसी छोटी बातों के लिए आपको कष्ट दें तो हम किस मर्ज की दवा हैं। लीजिये! जल्दी रुपया मंगाइये, रेल का समय समीप आ रहा है।"

इस दृश्य को स्मरण करके अब भी मेरी आँखों में आँसू भर आये हैं। आज आर्यसमाज की अवस्था पुकार पुकार कर चिल्ला रही है—लेखराम! हा! धर्मवीर, कर्तव्य-परायण लेखराम!!"

रुपये अन्दर से आये, पेटी की बांसली में डाले गये और आर्य-पथिक घोड़ा गाड़ी की भी प्रतीक्षा न करके रेलवे स्टेशन की ओर चल दिये।

धर्मशाला में अकेले लेखराम ने सचमुच सवा लाख का काम किया। सना-तनी ब्रह्मानन्द भारती ने नियोग की आड़ लेकर आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक को बहुत कुछ कोसा था। उसके मुकाबिले में महात्मा हंसराज जी ने पहले से व्याख्यान दिये थे और नवीन वेदान्त मत का खण्डन भी किया था परन्तु भारती

का प्रभाव न मिटा। तब पंडित लेखराम ने भारती जी को शास्त्रार्थ का घोषणा-पत्र भेजा। शास्त्रार्थ से तो वह बच गया परन्तु पंडित लेखराम ने, विज्ञापन देकर, नवीन वेदान्त मत खण्डन और वेदोक्त नियोग के मण्डन विषय पर २ सितम्बर की रात को बड़ा शक्तिशाली व्याख्यान में दिया। इस व्याख्यान स्वामी ब्रह्मानन्द भारती और महात्मा हंसराज जी के अतिरिक्त धर्मशाला में उपस्थित सब सज्जन विद्यमान देखे गये। पंडित लेखराम में एक बड़ा गुण था कि वह विरोधी की वक्तृता को स्वयं सुन आते थे। इसलिए उनके व्याख्यान टाले नहीं जाते थे। इस व्याख्यान ने भारती की सारी लीला को समाप्त कर दिया और जो कल्चर्ड महाशय पंडित लेखराम को लट्ठबाज और पेशावरी गुण्डा कह और लिख कर आर्य-पथिक से घृणा का भाव प्रकट किया करते थे उन्होंने भी इस अपूर्व वक्तृता पर हर्ष प्रकट करके अपने विरोधी विचारों का प्रायश्चित किया।

धर्मशाला से लौटते हुए पंडित लेखराम ने पठानकोट आर्यसमाज मन्दिर में "ईसाई मत खंडन" पर एक व्याख्यान दिया जिसकी वहाँ आवश्यकता बतलाई जाती थी और वहाँ से "वेद-प्रचार निधि" के लिए धन भी एकत्र कर लाये।

इसके पश्चात् भी कुछ थोड़ा ही काम ऋषि-जीवन सम्बन्ध कर पाये होंगे क्योंकि हम उन्हें गुजरातादि आर्यसमाजों में भ्रमण करते हुए देखते हैं। फिर मान्टगुमरी में प्रचार करके अक्तूबर मास में ऐबटाबाद में प्रचार करने के अतिरिक्त रावलपिण्डी और अमृतसर आर्य-समाजों के जलसों में उनका सम्मिलित होना पाया जाता है।

अमृतसर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव से निवृत्त होकर पंडित लेखराम ने लाहौर में तीन व्याख्यान दिये, जिनमें 'ब्राह्मसमाज के इतिहास" पर दृष्टि डालते हुए जो व्याख्यान हुआ वह बड़ा ही आन्दोलन पूर्ण था। लाहौर से चल कर ३ नवम्बर को मुलतान पहुँचे जहाँ ५ नवम्बर तक तीन व्याख्यान दिये। ६ नवम्बर को आराम करके ७ को डेरागाजीखाँ पहुँचे जहाँ उन्होंने उसी सायंकाल के समय "धर्म की आवश्यकता" पर व्याख्यान दिया। फिर १० नवम्बर तक तीन और व्याख्यान देकर ११ नवम्बर को मुजफ्फरगढ़ पहुँचे।

वहाँ दो व्याख्यान दे और करोड़ आर्य-समाज में प्रचार करके लाहौर लौट गये।

जीवन चरित्र का थोड़ा ही काम कर सके थे कि लाहौर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में भाग लेना पड़ा। नगर कीर्तन के समय नगर-प्रचार के अतिरिक्त १ दिसम्बर १८९५ को वार्षिकोत्सव का अन्तिम व्याख्यान दिया जिसमें सबसे अधिक जनसंख्या थी। व्याख्यान पर श्रोता-गण इतने मोहित हुए कि समय समाप्त होने के एक घण्टा पीछे तक बराबर जम कर बैठे रहे।

इन्हीं दिनों आर्य-पथिक का सबसे बड़ा ग्रन्थ "पुनर्जन्म" विषय पर छप कर तैयार हो गया और आर्य-जनता मात्र ने उसका बड़े आदर से सत्कार किया।

लाहौर के उत्सव के पश्चात् फिर जीवन-चरित्र का कार्य आरम्भ किया था कि आर्य-पथिक के लिए पुनः माँग आने लगी। ८ दिसम्बर को उनका व्याख्यान लुधियाना नगर में हुआ। १० को माछीवाड़ा ग्राम में धर्म प्रचार करके १२ दिसम्बर, १८९५ को रोपड़ पहुँचे जहाँ १३ तक दो व्याख्यान दिये। मूर्त्ति-पूजा विषय पर पौराणिक पंडितों के यहाँ शास्त्रार्थ भी हुआ।

कहाँ रोपड़ और कहाँ शरकपुर! दोनों रेलवे लाइन से दूर—परन्तु हम १५ और १६ दिसम्बर को शरकपुर (जिला लाहौर) में व्याख्यान देते देखते हैं।

इस वर्ष का दौरा भी गतवर्षानुसार जालन्धर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव पर ही समाप्त हुआ, और वहाँ से ही आर्य्य पथिक ने नये वर्ष का कार्य आरम्भ किया।

जनवरी, १८९६ के आरम्भ में ही पटियाला राभ में पहुँच कर पाँच व्याख्यान दिये। वहाँ से लाहौर लौटकर जीवन चरित्र में कुछ त्रुटि देख ११ जनवरी १८९६ को फिर मुलतान में ऋषि जीवन सम्बन्धी आन्दोलन के लिये गये। १९, जनवरी से तीन फरवरी तक वहाँ रहे, इस अन्तर में वहाँ सात व्याख्यान भी दिये। ४ फरवरी को लाहौर लौटकर फिर जीवन चरित्र का काम होने लगा, परन्तु स्थानीय प्रचार भी साथ-साथ चलता रहा। ९ फरवरी को मियाँ मीर में और १० तथा ११ फरवरी को अमृतसर में व्याख्यान दिये। वहाँ से

चलकर १४ से २४ फरवरी तक डेरा-इस्माइलखाँ आर्य्य समाज में रहे जहाँ उदासी साधु बालक ने शोर मचा रखा था। यहाँ बड़ी धूम के साथ व्याख्यान हुए। लौटते हुए २५, २६ फरवरी में व्याख्यान दिये और २७ फरवरी के दिन डेरा गाजीखाँ पहुँच गये। वहाँ एक पादरी से शास्त्रार्थ करके नगर कीर्तन कराया जिसमें स्वयं थोड़ी थोड़ी दूरी पर व्याख्यान देते रहे और २८ फरवरी को फिर ७०० की जनोपस्थिति में आर्य समाज के नियमों पर व्याख्यान दिया जिसकी समाप्ति पर १३ नये सभासद बने।

इसके पश्चात् लाहौर लौटकर जीवन चरित्र की छपाई के साथ साथ स्थानीय प्रचार भी करते रहे। फिर १५ मार्च को करनाल पहुँचे जहाँ नगर कीर्तन में नगर प्रचार करने के अतिरिक्त दो अत्युत्तम व्याख्यान दिये। वहाँ से १८ मार्च १८९६ को चलकर १९ को दिल्ली में "वैदिक-धर्म की श्रेष्ठता" पर व्याख्यान दिया। और वहाँ से सीधे अजमेर पहुँचकर वहाँ के आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वार्षिकोत्सव की कार्यवाही में तो पंडित लेखराम के दो बलयुक्त व्याख्यान हुए ही परन्तु नगर कीर्तन में एक ऐसी घटना हुई जिसे अजमेर आर्य्य-समाज के वृद्ध सभासद् अभी तक नहीं भूले हैं।

आर्य्य-पथिक भजन मण्डलीके साथ झूमते हुए जा रहे थे, और बीच में कहीं-कहीं व्याख्यान भी देते जाते थे। मार्ग में कुछ मुसलमान भाइयों से बातचीत होने लगी। पण्डित लेखराम के उत्तर सुन कर कुछ मुसलमान भड़क उठे। "ख्वाजा चिश्ती" की दर्गाह पास थी, इसलिये आर्य्य समाजी डर कर भाग गये। अकेला लेखराम न यार न मदद गार। परन्तु क्या लेखराम ने अपना धर्म प्रचार का काम बन्द कर दिया ? नहीं। कहीं सुना था कि विधर्मी के धर्म-मन्दिर से ३० कदम की दूरी पर प्रत्येक धर्म प्रचारक को अपने मत के समर्थन करने का अधिकार है। आप दर्गाह के द्वार पर पहुँचे। मुसलमान आश्चर्य से इनकी क्रिया को देख रहे थे। लेखराम ने दर्गाह के द्वार से उच्च स्वर से कदम कदम गिनने आरम्भ किये और तीसवें कदम (पग) पर पहुँच, एक छोटे पुल पर खड़े होकर धर्म-प्रचार शुरू कर दिया। "कब्रपरस्ती" और "मर्दुमपरस्ती" इत्यादि का जबरदस्त खण्डन होने लगा। मुल्लाओं ने बहुतेरा भड़काया परन्तु मुसलमान सर्वसाधारण जनता ने (जो एक सहस्र की संख्या में एकत्र हो गई

थी) वह दानियत (एक ब्रह्मवाद) की एक एक चोट पर वक्ता के साथ सहानु-भूति प्रकट की। उस समय तक आर्य-समाजियों को भी होश आ चुका था। चुपके से दो चार देखने गये कि लेखराम पर कैसी बीती, क्या मारा गया वा कहीं भाग कर बच गया। किन्तु उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने प्रचारक के व्याख्यान का प्रभाव अपनी आंखों से देखा और मुसलमान जन-साधारण को वक्ता के वशीभूत पाया !

अजमेर से लौट कर पण्डित लेखराम ने एक सप्ताह ही जीवन चरित्र का काम किया होगा कि मुस्तफाबाद (जिला अम्बाला) के उत्सव के लिए उनकी मांग आई। १०, ११ १२ अप्रैल, उस उत्सव सम्मिलित रहे जिसमें साधारण व्याख्यानों के अतिरिक्त २४ और २६ अप्रैल तक हम पण्डित लेखराम को दीना नगर आर्य्य समाज वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं। ७ जून, १८९६ को जालन्धर आर्य्य समाज में "आर्य्यों के जातीय त्यौहार" विषय पर व्या-ख्यान देना छपा है।

ऐसा मालूम होता है कि इन दिनों विशेष प्रकार से फिर पंडित लेखराम जालन्धर में स्थित हो गये थे. और अपनी धर्म-पत्नी तथा बच्चे सहित (जिस का नाम सुखदेव रखा था) मुहल्ला "कोट कृष्णचन्द्र" में किराये के मकान में निवास करते थे।

आदर्श ब्राह्मण गृह

जालन्धर में ही पंडित लेखराम ने वास्तविक गृहस्थाश्रम का आरम्भ किया, इसी स्थान पर देवी लक्ष्मी जी की गोद हरी हुई और अन्तको इसी भूमि में पंडित लेखराम को अपने इकलौते पुत्र का अन्त्येष्टि संस्कार करना पड़ा, इसलिये उनके गृहस्थ जीवन का पूरा वृत्तान्त इसी स्थान में देना आवश्यक प्रतीत होता है।

पंडित लेखराम जी का मेरे साथ विशेष प्रेम था। इसके बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं, फिर भी वह उस समय सारे आर्य्यजगत् को एक परिवार समझने लग गये थे और इसलिए उनका किसी स्थान विशेष से प्रेम नहीं रह सकता था। परन्तु पंडित लेखराम जी की धर्मपत्नी ; श्रीमती लक्ष्मी देवी जी उच्च आदर्श को ग्रहण नहीं कर सकी थीं। उनका मन केवल जालन्धर निवासिनी आर्य्या स्त्रियों से ही मिला हुआ था। लाहौर में वे जब तक रहीं अपने आपको परदेश में समझती रहीं और इस लिए वहाँ से घर चली गई थीं।

जब पुत्र उत्पन्न हो चुका, उसके पश्चात् स्वभावत: उन्हें भरी गोद लेकर उसी जालन्धर नगर में लौटने का उत्साह हुआ जहाँ से वह गोद हरी लेकर गई थीं। इसी अन्तर में पंडित लेखराम का लाहौर में रखना भी कुछ अनावश्यक ही प्रतीत हुआ क्योंकि जीवन-चरित्र की तय्यारी में उनको मुझसे अधिक सहायता मिल सकती थी। तब यही ठीक समझा गया कि उन्हें लाहौर आने की आज्ञा दी जावे।

इन्हीं दिनो पंडित लेखराम जी के पिता का देहान्त हो गया, और इसलिये १६ से १८ मई, १८९६ तक की छुट्टी लेकर वह अपने निवास-स्थान कहूटा को चले गये और वहाँ से अपनी धर्म-पत्नी और पुत्र को साथ लेकर जालन्धर आ गये।

पंडित लेखराम को मैं एक सच्चा ब्राह्मण मानता हूं और उनके गृह को आदर्श ब्राह्मण गृह मानता था क्योंकि वह त्याग का जीवन व्यतीत करते थे। चिरकाल तक उन्हें २५) मासिक वेतन ही मिलता रहा और उसी में व , अपना निर्वाह करते रहे। फिर जब उनका विवाह हो गया तो सभा ने स्वयं उनको ३०) देना आरम्भ किया ; आर्य्य-पथिक ने वेतन वृद्धि के लिये कोई प्रार्थना पत्र नहीं दिया था। फिर जब पंडित लेखराम के घर पुत्र उत्पन्न हुआ और मुझे मालूम हुआ कि उन्होंने "हिन्दू परस्पर सहायक भंडार" में सम्मिलित होने के अतिरिक्त १७ जून १८९५ से सन् लाइफ इन्स्योरेन्स कम्पनी" में अपने जीवन का बीमा करा लिया, तब मैंने सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करके उनका वेतन ३५) मासिक करा दिया था। शायद यह समझा जावे कि पंडित लेखराम को अपनी रची हुई पुस्तकों की बिक्री से अधिक आमदनी होती होगी, परन्तु उनकी पुस्तकों का सारा हिसाब पड़ताल करने से मुझे ज्ञात हुआ कि जब तक आर्य्य पथिक की पुस्तकों का सारा प्रबन्ध सद्धर्म-प्रचारक यन्त्रालय के आधीन (शायद सन् १८९५) नहीं हो गया था तब तक उन्हें पुस्तकों से एक कौड़ी का भी लाभ नहीं होता रहा। पंडित लेखराम के पीछे कईयों ने "आर्य्य मुसाफिर" नाम धराये, और उसके सहारे सहस्रों रुपये कमाये ; परन्तु आर्य्य पथिक ने धन जमा करना अपना उद्देश्य रक्खा ही न था और यदि वह अपने जीवन का बीमा न करा जाते तो देवी लक्ष्मी के पास अपने निर्वाह के लिये शायद थोड़े से आभूषणों के अतिरिक्त कुछ भी न बचता। और वह बीमे का आया हुआ धन क्या लक्ष्मी ने बर्ता ? सच्चे ब्राह्मण लेखराम ने अपनी धर्मपत्नी को भी ब्राह्मणी बनाया था और उन्होंने बीमा का पूर्ण २०००) रुपया गुरुकुल कोष में जमा कराके सदा के लिये आर्य्य-पथिक के स्मारक में एक विद्यार्थी पढ़ने की बुनियाद रख दी , मुझे आशा है कि सच्चे ब्राह्मण- कुल के पवित्र दान से पढ़े हुए ब्रह्मचारी भी त्यागी और सच्चे ब्राह्मण ही निकलेंगे।

पंडित लेखराम प्राचीन ब्राह्मणों की तरह त्यागमूर्ति तो थे, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि मध्य कालीन चरसिया वैराग्य के वह दास थे। नहीं प्रत्युत गृहस्थ जीवन का आदर्श भोगने की उनके कर्मों में सदा चेष्टा दिखाई देती है। थोड़े से धन से ही पुत्र के पालन और गृहस्थ की रक्षा का बड़ा

उत्तम प्रबन्ध किया करते थे। सुखदेव को गोद में लेकर खिलाते देख कोई विचारशील पुरुष नहीं कह सकता था कि सच्चे प्रेम का उनमें अभाव है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य वैरागी आर्यों की तरह वह अपने परिवार से भी उदासीन न रहते थे। परन्तु परिवार के प्रेम में फँस कर अपने सिद्धान्तों से गिर कर आत्म-घाती कभी नहीं बनते थे। इसके प्रमाण में आर्य-पथिक का जालन्धर से २४ जून, १८९६ को अपने चचा के नाम लिखा हुआ पत्र काफी है। इस पत्र में पण्डित लेखराम लिखते हैं—"पिता जी के देहान्त का समाचार घर वालों ने मुझे नहीं भेजा था। आपके पत्र से ही हम को पहले पहल सूचना मिली। मैं ११ वा १२ दिन घर रह कर लौट आया और लाला साहब (पिता जी से तात्पर्य) तथा तोताराम—दोनों के मृतक शरीरों की भस्म भी साथ लाया, जो मार्ग में शास्त्र की आज्ञानुसार जेहलम नदी में प्रवाह कर दी। मैं अब यहाँ चार महीने रहूँगा। एक मकान २) मासिक किराये पर लिया हुआ है। स्वामी जी का जीवन-चरित्र यहाँ साफ करके, फिर छपवाया जावेगा। जब तक यह न छप जाय तब तक यहाँ ही रहूँगा............घर में (अर्थात् कहूटे में) अब कोई आदमी नहीं है। सय्यदपुर के मकान का तो अब फैसला हो ही गया, कहूटे के लोगों से आप परिचित ही हैं; बतलाइये अब मकान कहाँ बनाऊँ। आपने तो रावलपिण्डी में बना लिया, और आप आयु भर वहीं रहेंगे......कोई फूल और कोई कहूटे की सलाह देता है। आर्य-सामाजिक भाई प्रत्येक अपने-अपने शहर में सम्मति देते हैं। मैं चाहता था कि यदि ऐसा होता जहाँ आप भी समीप होते तो उचित था। मुझे यद्यपि अब सारा जगत् ही कुटुम्बवत् दिखाई देता है और अपने सम्बन्धियों के साथ भी जन-साधारण से बढ़ कर प्रेम नहीं रहा तथापि रक्त का सम्बन्ध भी कुछ प्रभाव रखता है। आप जो सम्मति उचित समझें अवश्य लिखें ....चिरंजीव सुखदेव के दांत निकल रहे हैं; छः निकल चुके हैं, इसलिए कभी दस्त आ जाते हैं—वैसे वह स्वस्थ है, और उसकी माता भी स्वस्थ है।" इस सम्बन्ध में पंडित लेखराम की दिनचर्या का समय विभाग, जो उन्होंने अप्रैल १८९६ ई० की समाप्ति पर लिखा था, बड़ा प्रकाश डालता है :—

(१) "चार घड़ी अर्थात् सवा घंटा रात रहे उठ कर शौच के लिये जंगल में जाना फिर दन्त धावन और स्नान तथा सन्ध्या; और अग्नि-होत्र सूर्य के

उदय होने पर । अग्निहोत्र लक्ष्मी जी (आर्य-पथिक की धर्म्म-पत्नी जी) कर लिया करें और कभी-कभी मैं स्वयं भी कर लिया करूंगा ।

प्रत्येक दिन व्यायाम करना, ठीक ४० दण्ड ।

(२) वेद पाठ एक घण्टा; कुरान, तोरेत, इन्जीलका स्वाध्याय एक घण्टा वा अन्य मतों सम्बन्धी पुस्तकादि । ग्रन्थ निर्माण का कार्य ११ बजे तक ।

(३) १२ बजे से २ बजे तक—भोजन, विश्राम, गृहस्थ के कार्यादि और प्यारी लक्ष्मी को पढ़ाना ।

(४) ३ से ५ बजे तक पुस्तकावलोकन तथा लेख, विशेषतः ऐतिहासिक विद्या सम्बन्धी ।

(५) मल-त्याग, शौच, सन्ध्या, भ्रमण, व्याख्यान अर्थात् लोगों को सद्धर्म्म का उपदेश देना । अग्निहोत्र, भोजन, घर का प्रबन्ध—६ से ९ बजे तक ।

(६) अपने संशोधन के सम्बन्ध में विचार । सोने से पहले मुँह हाथ पांव धोकर कुल्ला करना और परमेश्वर का ध्यान करना । रात के दस बजे सोना; पूरे छः घण्टे सोना, कम बिल्कुल नहीं । एक चारपाई पर न सोना चाहिये; ऋतुगामी न होना चाहिये ।

(७) मल-त्याग के लिये अधिक समय न बैठना चाहिये, इससे बवासीर हो जाती है ।

(८) खाना जहाँ तक हो सके चबा कर खाना, ३२ बार यदि प्रत्येक ग्रास चबाया जावे तो कोई बीमारी नहीं होती । खाने के पश्चात् तत्काल ही लघु शंका के लिये बैठना चाहिये क्योंकि इससे मसाने की बीमारी नहीं होती ।

(९) प्रातःकाल उठकर पहले अनुमान आध पाव के बासी पानी नाक पकड़ कर पीना, जिससे अजीर्ण कभी नहीं होता ।

(१०) पाजामे के अन्दर लंगोट रखना चाहिये और लंगोट समेत नहाना चाहिये । लघु शंका के पश्चात् पानी वा मिट्टी से शुद्धि करनी चाहिये, जिससे शरीर अपवित्र न हो । व्यर्थ क्रोध न करना चाहिये, कटु वचन तथा झूठ से अलग रहना और "दीन-ए-इस्लाम" की विषयुक्त शिक्षा के बुरे प्रभाव को दूर

करने का प्रयत्न; और इसी प्रकार दूसरे मतों का भी; और वैदिक-धर्म का प्रचार। ईश्वर ! मेरी इस इच्छा को आप पूर्ण कर दो।"

जालन्धर में गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी जहाँ ऋषि जीवन-चरित्र की तैयारी का काम जारी था वहाँ स्थानीय प्रचार के अतिरिक्त बाहर धर्मोपदेशों के लिये जाना भी बन्द नहीं हुआ था। २९ से ३१ मई, १८९६ तक रोपड़ आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होकर अपने व्याख्यानों से सोये हुए कायर हिन्दुओं को वीर आर्य बनने की प्रेरणा करते रहे। द्वारिका मठ के शंकर स्वामी इसी वर्ष की ग्रीष्म ऋतु में जालन्धर पधारे थे। उनके मुकाबिले में जो बड़े-बड़े आर्य विद्वानों के व्याख्यान हुए उनमें से पंडित लेखराम का व्याख्यान बहुत ही हलचल मचाने वाला था। इन्हीं दिनों पंडित लेखराम ने कर्त्तारपुर (जिला जालन्धर) में आर्य धर्म की रक्षा के लिए दो बार जाकर धर्मोपदेश दिये और ऐसी जबरदस्त धार्मिक हलचल मचाई कि वहाँ एक प्रबल आर्यसमाज स्थापित हो गया।

यह पहले लिखा जा चुका है कि विवाह के दिन से ही प० लेखराम जी ने अपनी धर्म-पत्नी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। जिस प्रकरा अन्य विषयों में उनके उपदेश क्रियात्मक होते थे उसी प्रकार स्त्री शिक्षा का प्रचार भी जीवन द्वारा करते थे। जालन्धर में रहते हुए लक्ष्मी देवी जी को स्त्री-समाज के अधिवेशन और अन्य सब धार्मिक उत्सवों में भी सम्मिलित होने के लिये भेजते रहे। जिस प्रकार स्वयं सच्चे ब्राह्मण बने हुए पुरुष जाति के उद्धार के लिए काम करते थे, उसी प्रकार लक्ष्मी देवी जी को स्त्री जाति की सेवा के लिए तैयार करना चाहते थे। मुझ से धर्मवीर ने देशान्तर प्रचार के लिए गोष्ठी करते हुए अपने जीवन का सारा समय विभाग कई बार बतलाया था। इस समय विभाग में प्रायः लक्ष्मी देवी का मुख्य भाग होता था। यदि वानप्रस्थ का विचार आता तो उसमें भी लक्ष्मी देवी का जिक्र आता। धर्मवीर लेखराम लक्ष्मी देवी को क्या बनाना चाहते थे, वह उस समय विभाग से पता लगता है जो मैं ऊपर उद्धृत कर चुका हूँ। लक्ष्मी देवी में विनय और लज्जा का भाव बहुत ही विचित्र था; जिन दो देवियों से उनका हृदय मिला हुआ था, उनके सिवाय बहुत कम स्त्रियों से भी खुल कर बात करतीं। पंडित लेखराम जी

चाहते थे कि उनकी धर्म-पत्नी धर्म प्रचार विषयक योजना में उनसे सहायता लेकर अपनी बहिनों को वैदिक-धर्म की ओर प्रेरित करें। उन्होंने लक्ष्मी देवी का हौसला बढ़ाने के लिये मुझ से साधन पूछे। मैंने सम्मति दी कि श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को अपने साथ आर्य्य-समाजों के वार्षिकोत्सवों पर ले जाया करें। पंडित लेखराम ने उसी पर अमल करना शुरू कर दिया। अम्बाला और मथुरा आर्य्य-समाजों के वार्षिकोत्सवों पर देवी जी को अपने साथ ले गये जहाँ से उनका पुत्र बीमार होकर लौटा। मथुरा आर्य-समाज का वार्षिकोत्सव १६, १७ अगस्त, १८९६ को था। बीमार पुत्र को वहाँ से जालन्धर छोड़ कर पंडित लेखराम शिमला आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुये। वहाँ से जब २६ अगस्त को जालन्धर लौटे तो प्यारे सुखदेव की बीमारी बढ़ी हुई देखी। हम सब ने चिकित्सा तथा निदान कराने में कुछ उठा नहीं रखा, परन्तु हम सब के देखते-देखते पंडित लेखराम का प्यारा पुत्र २८ अगस्त, १८९६ के दिन सवा वर्ष की आयु में, इस भौतिक शरीर को त्याग कर स्वर्गलोक का पथगामी बना। उस समय पं० लेखराम की सहन शक्ति का मैंने चमत्कार ही देखा था। किसी प्रकार के भी शोक को समीप नहीं आने देते थे।

परन्तु बच्चे की दुखिया माता के हृदय पर बड़ा भारी वज्रपात दिखाई देता था। जिस जालन्धर की भूमि में पुत्ररूपी रत्न प्राप्त किया था उसी भूमि पर उसकी राख करके फिर कोमल हृदय भारत रमणी से कब वहाँ निवास किया जा सकता था। धर्मपत्नी को लेकर पं० लेखराम घर पहुँचाने चले गये और दो दिनों के पश्चात् पूर्ववत् ही धर्म प्रचार में सन्नद्ध हो गये।

भ्रमण और प्रचार

●

जुलाई के आरम्भ में पसरूर (जिला सियालकोट) से पण्डित लेखराम के लिये माँग आई। आ० प्र० सभा के एक प्रचारक ने महम्मदी जगत् को हिला दिया था। इस पर तीन महम्मदी प्रचारक बुलाये गये जिनसे शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़ शुरू हुई, तब पण्डित लेखराम के लिये तार पहुंचा। १८ जुलाई, १८९६ को आर्य्य-पथिक जालन्धर से चले और १९ को सायंकाल पसरूर में पहुँच गये। उसी समय बड़ा भारी नगर-कीर्तन हुआ। २० जुलाई को पहला व्याख्यान "वैदिकधर्म्म की श्रेष्ठता" पर हुआ जिसमें ८०० हिन्दुओं के साथ २०० मुसलमान भी उपस्थित थे। व्याख्यान की समाप्ति पर पसरूर में उपस्थित पाँच मौलवियों को प्रश्न करने का अवसर दिया गया परन्तु सिवाय एक मौलवी के और कोई न उठा और उसने भी केवल आर्य्य-पथिक की बातों को दोहरा दिया। दूसरे व्याख्यान का विषय था 'सच्चाई का मजबूत चट्टान" मौलवी लोगों ने पत्र-व्यवहार में ही समय समाप्त किया और पण्डित लेखराम दो और व्याख्यान देकर जालन्धर लौट आये।

पसरूर के सम्बन्ध में एक घटना लाला गणेशदास सियालकोटी ने लिखी है जो धर्मवीर लेखराम के निडर आत्मा की साक्षी है। तीसरे दिन पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिये अभी खड़े होने की तैयारी कर रहे थे कि एक बड़े प्रसिद्ध म्युनिसिपल-कमिश्नर आये और महाशय मथुरादास प्रचारक के पास बैठ कर कुछ कानाफूसी करने लगे। आर्य्य-पथिक ने कहा—"घुसपुस क्या करते हो क्या बात है ?" प्रचारक मथुरादास जी ने कहा कि यह महाशय थानेदार साहब का सन्देसा लाये हैं कि यदि बलवा हो गया तो पुलिस जिम्मेदार न होगी। आर्य्य-पथिक की आखें लाल हो गईं और कड़क कर बोले—"क्या हम युद्ध करने आये हैं ? हम तो धर्मोपदेश के लिये आये हैं सो हम जब तक चाहेंगे स्वतन्त्रता से करेंगे। जिसका जी चाहे सुने, जिसका

जो न चाहे न सुने। अगर यों ही बलवा हो तो पड़ा हो। हम देखेंगे कौन बलवा करता है। हम थानेदार साहब वा और किसी साहब की रक्षा की परवाह नहीं करते।"

जब व्याख्यान के लिये खड़े हुये तो देखा कि टाउन पुलिस के कुछ चौकीदार हाथ भर का लम्बा डण्डा लिये खड़े हैं। उनकी ओर देख कर अटक-अटक कर कड़कते हुये बोले—"ओ काली पगड़ी वालो! अगर व्याख्यान सुनना है तो अपनी खुशी से ठहरो नहीं तो तुम्हारी रक्षा की हमें परवाह नहीं है; अभी चले जाओ। मैं देखूँगा कि कौन मुझे काट जाता है।"

पसरूर से निवृत्त होकर पण्डित लेखराम शिमला आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिये चले गये। वहाँ पहले से मिर्जा गुलाम अहमद के चेले ख्वाजा कमालुद्दीन ने अपने मिशन का काम जारी कर रक्खा था। पण्डित लेखराम ख्वाजा साहेब के व्याख्यानों को सुनने जाते रहे और फिर आर्य्य-मन्दिर में तीन बड़े जबरदस्त व्याख्यान दिये। महम्मदियों की निमाज़ के मुकाबिले में आर्यों की सन्ध्या की श्रेष्ठता जतलाई और वैदिक-धर्म के सौन्दर्य्य को भली प्रकार प्रकाशित किया। मुसलमान तो पण्डित लेखराम के आक्रमणों से मुद्दत से तङ्ग आये हुये थे, परन्तु उन दिनों आर्य्य-पथिक ने एक नई पुस्तक का नोटिस दे रक्खा था। मुसलमान सुन चुके थे कि

'हुज्जतुल इसलाम'

पण्डित लेखराम इस पुस्तक में महम्मदी मत के विरुद्ध अपना सारा जोर लगायेंगे। इससे पहले मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी, आर्य्य-पथिक को अकाट्य युक्तियों से तङ्ग आकर, जवाब देने की ताब न रखते हुये उन्हें मौत की धमकी दे चुका था और लिखा था—

"इला-ए-दुश्मन् ना अन व बेरा
बतर्स अज़् तेग़् बरां मुहस।"

कि महम्मदी तलवार से डरे इस्लाम के विरुद्ध लिखना छोड़ दे। इन सब अवस्थाओं के होते हुये जब मिर्जा कादियानी के चेले ने हिन्दुओं के अन्ध विश्वासों को आर्य्य-समाज पर मढ़ना शुरू किया तो अपने अन्तिम व्याख्यान

में पण्डित लेखराम ने यह सिद्ध करने के लिये प्रमाण दिये कि इस्लाम के पैगम्बरों ने खुदाई का दावा करके कुफ्र फ़ैलाया है। जो प्रमाण आर्य्य-पथिक ने उस समय दिये थे वे सब 'हुज्जतुल इसलाम" में पीछे छप गये हैं। सारा सभा-मंडप मनुष्यों से भरा हुआ था, जिनमें आधे मुसलमान थे। जब पंडित लेखराम ने ग्रन्थों के प्रमाण देते-देते एक आयत पढ़ी जिसका अर्थ था—"मैं खुदा के नूर से हूं।" और इस पर एक कवि का वचन पढ़ा—

"ब जाहिर नूर अन्दर से जोआहे,
शमाए नूर वे कफ़ खोआहे।"

जिसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि महम्मद ब्रह्म के प्रकाश से जुदा प्रतीत होता है। परन्तु वह है वही ब्रह्म। मुसलमानों की जमात में से एक युवक मंडल से रहा न गया और उनमें से एक युवक बी० ए० ने चीख कर कहा—'काफिरों को काटने वाली महम्मदी शमशीर को मत भूल" पंडित लेखराम एक पल के लिये रुक गये; फिर जिधर से शब्द सुने थे उधर आँखें घुमा कर सिंहनाद गुंजा दिया—"मुझे बुजदिल महम्मदी तलवार की धमकी देता है। मैंने अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना नहीं सीखा। जानते नहीं हो मैं जान हथेली पर लिये फिरता हूं।'

सारे हाल में सन्नाटा छा गया और व्याख्यान के अन्त तक फिर किसी ने चूं न की। जैसा कि मैं पहले बतला चुका हूँ शिमला से पण्डित लेखराम सीधे जालन्धर गये थे जहाँ अपने एकलौते पुत्र का उन्हें अन्त्येष्टि संस्कार करना पड़ा। जालन्धर से परिवार को छोड़कर पण्डित लेखराम सीधे बजीराबाद के वार्षिकोत्सव में सितम्बर, १८९६ के आरम्भ में ही पहुँच गये इसके विषय में श्रीनारायण कृष्ण जी प्रधान आर्य्य-समाज गुजरांवाला ने लिखा है—

"आर्य्य-पथिक सब बातों पर आर्य्यसमाज के काम को तर्जीह दिया करते थे। हम लोगों को याद है कि एक बार जब हम लोग वजीराबाद के उत्सव पर गये हुए थे तो वहाँ हमको समाचार मिला कि पण्डित लेखराम का एक-लौता बेटा संसार से चल बसा है। वजीराबाद में पहले उनके आने की खबर बड़ी गर्म थी परन्तु इस शोक-जनक समाचार को सुनकर समझा गया कि अब

पण्डित जी नहीं आ सकेंगे। परन्तु बहुत थोड़ी देर के पश्चात् आश्चर्य से देखा कि वह अपने घर से सीधे उत्सव में आ पहुँचे और ऐसी शोक-जनक घटना के होते हुए भी अपने धार्मिक कर्तव्य को बड़ी गम्भीरता से पालन करते रहे।"

वजीराबाद के इस वार्षिकोत्सव में मैं भी सम्मिलित था। पहले दिन पण्डित लेखराम जी का व्याख्यान प्रातःकाल के समय विभाग में छपा हुआ था, परन्तु राजा सर अताउल्ला और उनके परिवार के सम्मिलित होने के कारण उस समय मुझे खड़ा किया गया। न जाने मुसलमान भाई पण्डित लेखराम से क्या आज्ञा रखते थे कि मेरे व्याख्यान को सुनकर विस्मित हो गये। उनकी समझ में न आया कि आर्य्य-मुसाफिर क्यों ऐसा जन-प्रिय तथा शान्ति-वर्धक व्याख्यान देता है। मेरा विषय ईश्वर-प्राप्ति था और मैंने उसमें महम्मदी बुत और पीर परस्ती की खबर ली थी; इसलिए श्रोतागण को निश्चय हो गया कि पण्डित लेखराम ही बोल रहे हैं।

सायंकाल के व्याख्यान में मेरा नाम था, इसलिए उस समय कादियानी मिर्जा गुलाम अहमद के चेले हकीम नूरउद्दीन भी तशरीफ लाये। मुसलमानों की भी पर्याप्त उपस्थिति थी जब पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिए खड़े हुए। उस व्याख्यान में पण्डित लेखराम ने ईश्वर का स्वरूप ऐसा खींचा कि मुसलमानों के सिर हिलने लग गये। फिर जब झूठे पैगम्बरों की पोल खोलनी शुरू की तो जहाँ मुसलमान सर्व साधारण करतालिका ध्वनि से सभा मण्डप को गुंजाने लगे वहाँ मौलवी नूरउद्दीन बहुत खीज रहे थे, परन्तु उस समय क्या हो सकता था। आर्य्य-पथिक के व्याख्यान की नगर में धूम मच गई।

सायंकाल हम सब पलकू के किनारे-किनारे स्रोत की ओर दूर निकल गये और सन्ध्या-वन्दन से निवृत्त होकर रात को लौट रहे थे कि नगर से बाहर एक मस्जिद के खुले मैदान में मौलवी नूरुउद्दीन अपना धर्म-प्रचार कर रहे थे। रात अन्धेरी थी, हम सब सुनने खड़े हो गए। मौलवी साहब बोले—"अरे बेवकूफो! तुम सब बकरों की तरह दाढ़ी हिला रहे थे और यह न समझे कि तुम्हारे ईमान पर कुल्हाड़ा चला रहा है।" इतना ही सुनकर मैंने

पण्डित लेखराम जी को उनकी कृतकार्यता पर बधाई दी और हम सब भोजनशाला को चल दिये।

मुझे यह भी याद पड़ता है कि दूसरे दिन बाजार में आर्य्य-पथिक की कुछ मुसलमानों से बातचीत होने लगी, जिस पर आर्य्य पुरुष घबरा गए थे; परन्तु उसका परिणाम अच्छा ही निकला।

हम सब वजीराबाद आर्य्य समाज के उत्सव में ही सम्मिलित थे कि मुकेरियाँ के एक भाई वहाँ के अधिकारियों का पत्र लेकर पहुँचे जिससे पता लगा कि वहाँ एक विचित्र प्रकार का शास्त्रार्थ रचा गया है। सनातन सभा के किसी पंडित ने एक महाभारत के श्लोक को वेद मन्त्र कहकर पेश किया, जिस पर आर्य्य समाज तथा सनातन सभा के प्रधानों का विवाद हो गया और दोनों के हस्ताक्षर से एक स्वीकार पत्र स्टाम्प पर लिखा गया। इस स्वीकार पत्र का तात्पर्य यह था कि यदि सनातन सभा का पंडित अपने बोले श्लोक को वेद में दिखा दें तो आर्य्य-समाज के प्रधान ५००) जुरमाना देंगे, परन्तु यदि सनातन सभा का पण्डित ऐसा न दिखा सके तो सनातन सभा का प्रधान ५०) जुरमाना देगा। मैंने इस जूआबाजी के शास्त्रार्थ से इनकार करना चाहा, परन्तु आर्य्यपथिक ने कहा कि जुएबाजी को अलग करके यह तो हमारा कर्त्तव्य है कि अपने मत का समर्थन किया जावे। बस हम दोनों गुरुदासपुर पहुँच कर इक्के पर ९ सितम्बर को २ बजे दिन को मुकेरियाँ पहुँच गये। उस दिन मैंने और दूसरे दिन आर्य्य पथिक ने व्याख्यान दिए। तीसरे दिन २००० की उपस्थिति में सनातनी बड़े-बड़े पण्डित भी श्लोक को वेद-मन्त्र सिद्ध न कर सके।

परन्तु इस स्थान की एक घटना पण्डित लेखराम के हठ और उनके धर्म्म-प्रेम दोनों का परिचय देती है। मैं यतः मन्त्रों का उच्चारणादि शुद्ध कर सकता था इसलिये मुकेरियां के आर्य्यभाई चाहते थे कि शास्त्रार्थ मैं करूँ। उनको यह भी डर था कि कहीं पण्डित लेखराम अपने अक्खड़पन से उलटा असर न डाल देवें। जब वेदों में आन्दोलन करके देख लिया कि विवादास्पद छन्द वेद-मन्त्र नहीं प्रत्युत महाभारत का श्लोक है तो मैंने कहा कि हममें से एक को अब जाने दो क्योंकि हम दोनों ने जगराओं आर्य्य-समाज के

वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होना है। और वहां १२ सितम्बर के प्रातः पहुँचने के लिये मुकेरियाँ से ११ के प्रातःकाल चल देना चाहिये। जाने को मैं स्वयं तय्यार हुआ जिस पर तीन चार बार यही उत्तर मिला कि इक्का नहीं मिलता, फिर यह निश्चय हुआ कि पण्डित लेखराम जी जाँय। यह निश्चय होना ही था कि पाँच मिनटों में बड़ा तेज इक्का ला कर खड़ा कर दिया गया। पंडित लेखराम जी असल बात ताड़ गये और बोले—"अब बड़ी जल्दी इक्का आ गया। जाओ, मैं नहीं जाता, ये तुम्हारी शरारत समझ गया हूँ।" मैंने इक्का ले जाने को कहा और आर्य्य-भाई घबराये कि अब शास्त्रार्थ में पण्डित लेखराम जी खड़े होकर कहीं काम न बिगड़ें। जब शास्त्रार्थ के मैदान में आये और मैंने पण्डित लेखराम को कुर्सी पर बैठने को कहा तो उनमें विचित्र परिवर्तन दिखाई दिया। ऐसा ज्ञात होता था कि सारे शास्त्रार्थ का उत्तरदातृत्व उन्हीं पर है और यह उनका ही कर्त्तव्य है कि सबसे योग्य आदमी को शास्त्रार्थ के आसन पर बैठायें। मुझे कहा—"लाला जी! बैठिये, शास्त्रार्थ आप करेंगे।" मैंने कहा कि पण्डित लेखराम की उपस्थिति में मैं कैसे बैठ सकता हूँ। उत्तर बड़े प्रेम और आग्रह पूर्वक था। मुसकरा कर बोले—"यह बात अब जाने दीजिये, यह आपका ही काम है। यदि मैं बैठ गया तो शास्त्रार्थ की रिपोर्ट कौन लिखेगा।" यह कहा और मुझे पकड़ कर कुर्सी पर बैठा दिया।

यह आचरण का परस्पर विरोध शायद सब की समझ में न आयेगा, परन्तु बुद्धिमान् पाठक इसके रहस्य को समझ जायेंगे।

१२ सितम्बर को मुकेरियाँ से चल कर दिन-रात यात्रा करते हुये हम दोनों १३ को प्रातः जगराओं के वार्षिकोत्सव में जा कर सम्मिलित हुये। जो रहतिये पीछे से शुद्ध हो कर आर्य्य-समाज में सम्मिलित हुये थे वे पहले-इसी स्थान में पण्डित लेखराम जी को मिले थे।

जगराओं में फिर नियत घटना आ कर उपस्थित हुई। वहाँ के पौराणिकों ने स्वयं आर्य्य-समाज का सामना करने की शक्ति न देखते हुये मुसलमानों को मुबाहसे के लिये खड़ा किया। तहसीलदार भी मुसलमान था, इसलिये उन्हें विजय की बड़ी आशा थी। मैं जब उत्सव समाप्त करके लौटने लगा तो कुछ आर्य्य भाइयों ने वहाँ भी मेरी मिन्नत की कि मैं आर्य्य-पथिक को साथ ही

ले जाऊँ। मैने मालेरकोटले की व्यथा याद करके ऐसा करने से इन्कार कर दिया। शहर में धूम मच गई कि आर्य्यों को और विशेषतः लेखराम को, कष्ट दिया जायगा। परन्तु सिंह के समीप जाना बड़ा कठिन था विरोधियों की पोल खोलने से पहले आर्य्य-पथिक लेखराम जगराओं से न हिले।

२६, २७ सितम्बर को, पण्डित लेखराम झङ्ग आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में व्याख्यान देते तथा शङ्का समाधान करते रहे।

नवम्बर के अन्त में लाहौर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हो कर व्याख्यान दिये और उसके पश्चात् फिर २७ दिसम्बर, १८९६ के दिन जालन्धर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर पहुँचे। इन दोनों महीनों लाहौर रह कर जीवन-चरित्र की तय्यारी और छपाई का काम निर्विघ्नता से होता रहा और अपनी माता तथा धर्म-पत्नी को भी आर्य-पथिक ने लाहौर में ही टिका दिया। जालन्धर आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देकर पण्डित लेखराम मेरे साथ ही लुधियाना आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर गये। उस स्थान की एक घटना वर्णनीय है जिससे पता लगता है कि प्रतिज्ञा-पालन का भाव आर्य्य-पथिक को कैसा दृढ़सकल्प बनाये हुए था।

लुधियाना आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर अन्तिम दिवस पण्डित लेखराम का व्याख्यान नियत था। उससे पहले मैंने वेद-प्रचार-निधि के लिये अपील की थी और जब धन एकत्रित हो चुका तो पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिये खड़े हुये। ११ माघ, संवत् १९५३ सद्धर्म प्रचारक में लिखा है—
"अभी व्याख्यान आरम्भ नहीं किया था कि पण्डित जी की प्रकृति कुछ रुग्ण हो गई (पेट में दर्द होने लगा था) जिस कारण वह अपना व्याख्यान न दे सके। उनके स्थान में लाला मुन्शीराम जी ने धर्म विषय पर·········
व्याख्यान दिया ······· उनके पश्चात् पण्डित जी की प्रकृति कुछ ठीक हो गई और उनका व्याख्यान आरम्भ हुआ। ········जनोपस्थिति १२०० के लगभग थी।" २९ दिसम्बर को रात को लुधियाना आर्य्य-समाज का उत्सव समाप्त हुआ और ३१ की शाम को पण्डित लेखराम रेल और टट्टू की यात्रा करते हुए शरकपुर आर्य-समाज में पहुँचे और १ जनवरी, १८९७ के दिन धर्म-चर्चा में पूरा भाग लेने के अतिरिक्त एक पतित को शुद्धि की और अपने प्रभावशाली

व्याख्यान के साथ वार्षिकोत्सव को समाप्त किया। शरकपुर से लौट कर फिर पण्डित लेखराम के भागोवाला (जिला गुरुदासपुर) आर्य्य-समाज के उत्सव में ही सम्मिलित होने का पता लगता है जो १७ और १८ जनवरी को हुआ। उत्सव मे पंडित लेखराम जी ने दो व्याख्यान दिये और उत्सव के पश्चात् तक ठहर कर चौधरी फतेहसिंह के लड़के का नामकरण संस्कार कराया तथा आर्य्य-समाज के कुछ नये सभासद बनाये। यह सब तो किया परन्तु मुझे जिस दृश्य में अधिक आनन्द आया वह उत्सव के समय शास्त्रार्थ था।

सायकाल अपना व्याख्यान समाप्त करके मैं सन्ध्या-वन्दन के लिये चला गया। फिर भोजन करके बैठा था जब पता लगा कि एक मुसलमान ग्रेजुएट के साथ पण्डित लेखराम का शास्त्रार्थ हो रहा है। कम्बल ओढ़ कर मैं शास्त्रार्थ का आनन्द लेने चल दिया। जनोपस्थिति अढ़ाई हजार से कम न होगी। आस-पास के ग्राम स्त्री-पुरुषों से खाली हो गये थे। इनमें दो सहस्र तो जाट थे और शेष ब्राह्मण, खत्री, मुसलमानादि। एक तुर्की टोपी वाला एक ओर और आर्य्य-मुसाफिर दूसरी ओर बैठे हैं। प्रश्नकर्त्ता "तुर्की टोपी" थे और उत्तरदाता पंडित लेखराम। पडित लेखराम मेरे आने से पहले यह प्रतिज्ञा स्थापन कर चुके थे कि उत्तर में दुर्जन-तोष न्याय के अनुसार जो कुछ वह कहेगे उसके लिये कुरान वा हदीस मूल का प्रमाण देंगे और पूछा था कि क्या महम्मदी प्रश्नकर्त्ता भी ऐसी प्रतिज्ञा करने को तय्यार हैं।" तुर्की टोपी उत्तर दे चुकी थी कि वह भी मूल वेद का ही प्रमाण देंगे। महम्मदी ग्रेजुएट ने प्रश्न नियोग विषय पर कर छेड़ा था और जब मै पहुँचा तो एक पुस्तक हाथ में लिये उसमें से कुछ पढ़ रहा था। मेरे सामने निम्नलिखित नाटक हुआ।

महम्मदी—"देखिये हवाला रगवेद, मन्दिल·········सोकत ······· "

आर्य्य-पथिक—"शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकते हो और वेद-दानी का दावा है। बस तुम निग्रह स्थान में आ गये। या तो दावा छोड़ो या हार मानो।"

महम्मदी—"अजी हम वेद जानें या न जानें, एतराज तो ठीक है।"

आर्य्य-पथिक—"पहले कहो—मैंने झूठ बोला कि मैं मूल-वेद जानता हूँ

और झख-मारी—यह कहो तब मुबाहसा आगे चलेगा।"

मुहम्मदी ग्रेजुएट ने बहुत हेरा-फेरी की परन्तु अन्त में उसको कहना ही पड़ा—"अच्छा मैने गलत कहा था कि मैं मूल-वेद में से हवाले दूंगा—अब मेरे सवाल का जवाब दीजिये।"

आर्य्य-पथिक—"आये अब राह-ए-रास्त (सीधे मार्ग) पर हाँ, अब जवाब देता हूँ।"

मेरे पास दस बीस पढ़े-लिखे मुसलमान और दो-तीन मौलवी खड़े थे, सब बोल उठे—"सुबहानऽल्ला! क्या ताकस मुनाजरा है! शेर के पजे में फंसा हुआ है।"

पण्डित लेखराम ने न केवल वैदिक नियोग का ही भली प्रकार मण्डन किया प्रत्युत मुसलमानों के मुता के मसले को भी पेश किया। इस पर मुहम्मदी ग्रेजुएट ने कहा—"सिर्फ कुरान की आयत पढ़ देने से काम न चलेगा। किसी मुस्तनिद तफसीर (प्रामाणिक भाष्य) का हवाला भी देना होगा।"

आर्य्य-पथिक—"अच्छा बतलाओ तुम किस तफसीर को मुस्तनिद मानते हो?"

महम्मदी ग्रेजुएट ने जिस तफसीर का नाम लिया वही पण्डित लेखराम के हाथ में थी, उन्होंने उसमें से पढ़ कर सुना दिया। मालूम होता है कि तुर्की टोपी ने कभी कोई तफसीर पढ़ी न थी, पण्डित लेखराम से किताब खुद पढ़ने को माँगी। यहाँ पण्डित लेखराम की हाजिर जवाबी काम आई। महम्मदी ग्रेजुएट मुबाहसे में एक स्थान में कह चुका था कि खुदा को बीच में क्यों घसीटते हो क्या लाजमी है कि खुदा को मान कर ही मुबाहसा चले?" इसी का सहारा लेकर और सामने खड़े एक वृद्ध मौलवी साहेब को सम्बोधन करके आर्य-पथिक ने कहा—

मौलवी साहेब! आप तशरीफ ला कर हाजरीन को पढ़ सुनाइये कि कुरान शरीफ की तफसीर में क्या लिखा है। इस दहरिये (नास्तिक) के हाथ में मै कुरान शरीफ न दूँगा।"

मौलवी साहेब को कोई आकर्षण शक्ति वेदी पर खींच ले गयी और उन्होंने तफ़सीर के शब्द ज्यों के त्यों पढ़ कर अपनी ओर से यह भी कह दिया—"कौन कहता है कि कलाम मजीद में मुताका हुक्म नहीं है !"

सभा मण्डप करतालिका ध्वनि से गूंज उठा और सभा विसर्जन हुई ।

इसके पश्चात् पण्डित लेखराम जम कर लाहौर में ही जीवन चरित्र का काम करते रहे और उनके कहीं बाहर प्रचार के लिये जाने का पता नहीं लगता । मैंने भी उनका यह अन्तिम व्याख्यान सुना; इसके पश्चात् पण्डित लेखराम का सबसे अन्तिम प्रचार मुलतान नगर में हुआ जिसका हल उनके पत्र से ज्ञात होता है जो उन्होंने ४ मार्च को ११ बजे रात्रि के समय, मन्त्री आर्य-प्रतिनिधि सभा को लिखा था—"मेरे यहां ४ व्याख्यान हुए, खूब रौनक रही । मेरे सक्खर जाने के लिये यहां के समाज की सम्मति नहीं है, क्योंकि वहां क्वारन्टीन बीमारी का लगा हुआ है । मुझे आग्रह पूर्वक उन्होंने रोक लिया है और आपको तार दे दी है । मुजफ्फर गढ़ में दूसरा समाज होने की शङ्का है इसलिए आज रात को वहां जाता हूँ ।"

पाठक वृन्द ! आपने आर्य्य-पथिक के जीवन के साथ-साथ इतनी यात्रा की, आपका उत्साह बढ़ता गया और इस पवित्र जीवन के साथ प्रेम की वृद्धि होती गई । क्या आप अकस्मात् इस जीवन की शृङ्खला को टूटते देख कर दुःखित न होंगे ? मैं भी उसी प्रकार दुःखित हूँ और चाहता नहीं कि उसका वर्णन शीघ्र समाप्त हो । परन्तु काल की गति के आगे किसका वश चला है । फिर भी मुलतान के अन्तिम प्रचार को विस्तृत करके शिर पर आई हुई आपत्ति को कुछ काल के लिये टालना चाहता हूँ ।

मुलतान में कालिज दल वालों की ओर से दूसरा आर्य्य-समाज खुला हुआ था । उन्होंने आर्य्य-प्रतिनिधि सभा के काम के विषय में कुछ भ्रम फैलाये थे जिन्हें दूर करने के लिये पण्डित लेखराम गये थे ! पण्डित लेखराम जी के मुकाबिले में उन लोगों ने भी व्याख्यान कराये जिनमें पण्डित लेखराम को अपशब्द ही न कहे गये प्रत्युत सिक्खों को भड़काने के लिये उन्हें गुरु निन्दक बतलाया गया । ऐसी अवस्था हो चुकी थी जब ४ मार्च को पं० लेखराम का इस जीवन में अन्तिम व्याख्यान हुआ । इसका आँखों देखा हाल एक सभ्य

पुरुष ने, १४ वर्ष हुए, मुझे लिख कर भेजा था जिसे यहाँ उद्धृत करता हूँ—

"पण्डित (लेखराम) जी के व्याख्यान कुप्मवङ्गरी-गीरां और समाज मन्दिर में होते रहे। मैंने जा कर मुसलमानों से कहा कि उनसे मुबाहसा कर लो। वे कहने लगे कि यह बड़ा आलिम है हम उसकी बराबरी नहीं कर सकते। ....एक दिन पण्डित जी ने लाला (क) काशीराम वकील को जो उस समय कल्चर्ड समाज के प्रधान थे, और चेतनानन्द जी (वकील) को समाज मन्दिर में बुलवाया और उनसे कहा—"देखो मिर्जा ने कैसी सख्त किताब लिखी है जो कि अनजानों को भ्रम में डाल सकती है। इसका उत्तर अवश्य देना चाहिये। आप लोग निरे लड़ाई झगड़ों में पड़े हुये हो।" बहुत-सी बातचीत हुई परन्तु कुछ परिणाम न निकला, बल्कि उसी दिन उन लोगों ने भाई जगतसिंह का व्याख्यान कुप्मवङ्गरीगोरां" में कराया। वहाँ खालसों की उपस्थिति खासी थी जिसमें लाला काशीराम और लाला चेतनानन्द ने स्वयं कहा कि पण्डित लेखराम कहता है कि गुरु नानक मुसलमान था इसलिये उसका समाज से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं कुछ भाइयों समेत पण्डित जी के दर्शन को गया और व्याख्यान का सारा हाल उन्हें सुनाया। कुछ देर सोचने के पश्चात् बातचीत करते हुये पंडित जी के मुंह से निकला—"कौन कहता है कि गुरु नानक मुसलमान थे ?" चलो कल यही व्याख्यान होगा।"

"नोटिस रात को ही लिखे गये। दूसरे दिन ४बजे मध्यान्होत्तर में समाज-मन्दिर में गया। कई भाइयों के प्रश्नों के उत्तर देते रहे। फिर अजवाइन मंगाई और साफ करके पानी के साथ खाली और कहा—रेल में यही मेरा जीवन है, यह बड़ी उत्तम औषधि है।" सात बजते ही पण्डित जी मैदान में पहुँचे। हम लोग भजन गाते थे और पण्डित जी पेन्सिल से व्याख्यान के लिये नोट लिख रहे थे। सिक्ख भड़काये हुये बड़े जोश से लाठियाँ लिये जमा थे। व्याख्यान आरम्भ हुआ। आर्यावर्त्त की अवनति के आरम्भ काल से वक्तृता को उठा कर परस्पर के द्वेष के बीज का खोज लगाते हुये बतलाया कि थोड़े से स्वार्थ ने आर्य्यावर्त्त का नाश कर दिया है। आपने बतलाया है कि महमूद और

क—(आर्य्य-पथिक की मृत्यु के पश्चात् यह फिर वेद-प्रचार-दल के समाज के प्रधान हो गये थे।)

अलाउद्दीन के विजय का साधक तुच्छ जीवों का स्वार्थ ही था। बहुतसे दृष्टान्तों के पश्चात् आपने विष्णु बाबा, मुन्शी इन्द्रमणि और स्वामी दयानन्द की हिम्मत का वर्णन किया जिन्होंने विरोधी आक्रमणों से आर्य-जाति को बचाने के प्रयत्न किया। इसके पश्चात् अपने विषय को लेकर मिर्जागुलाम अहमद की "सतवचन" पुस्तक में से गुरु नानक के मुसलमान होने के विषय में लेख पढ़ कर चारों ओर देख पूछा—"यदि कोई खालसा बहादुर विद्यमान हैं तो इसका जवाब दें।" फिर लाला काशीरामादि के उत्तर में "ग्रन्थी फोबिया" पुस्तक पेश करके पूछा कि जिन कल्चर्ड साहेबान ने गुरु नानक के विरुद्ध ऐसी पुस्तक छपवाई, क्या वे अब गुरु नानक के पवित्र आचरण पर लगाये कलङ्क को दूर कर सकते हैं?" फिर बड़े प्रबल प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध किया कि गुरु नानक मुसलमान न थे।

व्याख्यान की समाप्ति पर लाला चेतनानन्द जी के मुन्शी ने विघ्न डालने की नीयत से कहा—"पण्डित (लेखराम) जी ने (अपने व्याख्यान में) गुरु नानक को हिन्दू तो कहीं नहीं कहा" इस कुटिल नीति को भी पण्डित लेखराम की हाज़िर जवाबी ने परास्त कर दिया। आर्य्य-पथिक बोले—

"देखो बाबा नानक देव स्वयं क्या कहते हैं—

हिन्दू अन्हा (अन्धा तुर्को काणा।
दोहां विचों ज्ञानी स्याणा।

बाबा नानक जी ज्ञानी अर्थात् आर्य्य थे, गुलाम हिन्दू न थे।"

हमारे चरित्र नायक के जीवन की रङ्ग-भूमि में अन्तिम जवनिका उठने वाली है। वह अन्तिम दृश्य बड़ा ही मर्म-भेदक, गम्भीर और पवित्र है जो अपने स्थिर संस्कार आर्य्य जनता पर छोड़ा गया है। उसकी अन्तिम जवनिका के गिरने के पश्चात् कुछ लिखना पाठकों के उच्च आदर्श की ओर उठे हुए हृदयों को फिर से भूमितल पर पटकने के सदृश होगा, इसलिए आइये! इस जीवन पर एक व्यापक दृष्टि पहले से ही डाल जाँय।

●

चरित्र संगठन

बचपन से ही लेखराम पर ब्राह्मणत्व के संस्कार पड़ रहे थे। यद्यपि वर्ण विचार से जन्म क्षत्रिय गृह में हुआ था तथापि लेखराम के पूर्व जन्म के प्रबल संस्कार, विरुद्ध वायु-मण्डल में भी, उन्हें ब्राह्मणत्व के साँचे में ढाल रहे थे। उनका

त्याग का सरल जीवन

निस्सन्देह साक्षी दे रहा था कि पुलिस के बदनाम महकमे के अन्दर भी सावधान रह कर यह एक दिन इन्द्रियों के दासत्व की बेडी को काट डालेगे। तम्बाकू की तो बचपन में ही बैतुलबाज़ी से जड़ काट डाली थी। मांस, मद्य तथा अन्य मादक द्रव्यों के कभी समीप नहीं गये। पाप रूपी दूषण तो एक ओर रहे किसी व्यसन को भी जीते जी समीप नहीं आने दिया। और तो और, पान भी कभी नहीं खाया। कपड़ों के बनाव-चुनाव को वह ज़नाना-पन के नाम से पुकारते थे। स्वास्थ्य अत्युत्तम रहता था, इसलिए पोशाक से शोभा बढ़ाने की उन्हें आवश्यकता न थी। कैसे भी कपड़े किसी ढङ्ग से पहन लें, उनके शरीर पर स्वयं शोभा पा जाते थे। जब तक अत्यन्त आवश्यकता न होती तब तक दरमियाने दरजे में भी यात्रा न करते। और जो व्यय करते वही सभा से लेते। जहाँ अन्य उपदेशक पूरे इक्के का किराया १) लगाते वहाँ आर्य्य-पथिक के बिलों में उसी स्थान का किराया साढ़े तीन आने दर्ज होता। जहाँ कुली से असबाब उठवा कर ले जाने में बचत होती वहाँ इक्का गाड़ी पर नहीं बैठते थे। और यदि यात्रा में कहीं उतरने से अपना काम भी होता तो वहाँ किराया सभा से न लेते। दृष्टान्त के लिए केवल एक बार पत्र का पेश करना काफ़ी होगा। सभा के मन्त्री जी ने १५ जनवरी १८९६ को लिखा—"मान्य-बर पण्डित जी नमस्ते आपके ९-१-९६ के बिल में जो ७ दिसम्बर को लाहौर

तक का किराया रेल और विविध लिखा है उसमें "विविध" से क्या तात्पर्य्य है तथा आपने २३ दिसम्बर, १८९५ सहाले से लाहौर तक का किराया ३।।=) लिखा है, परन्तु लाहौर से सहाले तक का किराया आपने नहीं लिखा, इसका क्या कारण है ? यदि भूल हो गई हो तो सूचित कीजिये कि बिल में दर्ज कर दिया जावे।"

इसके उत्तर में पण्डित लेखराम ने लिखा—'विविध से तात्पर्य्य है, किराया, मजदूर का जो स्टेशन तक दिया गया है। और लाहौर से सहाले तक का किराया मैंने जान-बूझ कर नहीं लिखा क्योंकि वह आधा कुछ मेरा निज का काम था और ऐसा किराया मै वसूल नहीं किया करता।"

सत्व-गुणी ब्राह्मण मैं लेखराम को इसीलिये कहता हूँ।

सचाई और सदाचार की मूर्ति

ऊपर वर्णन की हुई कहानी में आर्य्य-पथिक की सत्य-परायणता के बहुत से प्रमाण मिलते हैं। साधारण मामलों में तो मैंने प्रायः अच्छे उपदेशकों को सत्यवादी पाया है, परन्तु आर्य्य सिद्धान्तों के मानने में ऐसे उच्चकोटि के उपदेशक भी गिर जाते हैं और स्वयं जिस सिद्धान्त पर सन्देह हो उसको भी सिद्ध करने खड़े हो जाते हैं। पण्डित लेखराम का व्यवहार इससे सर्वथा विरुद्ध था। जब तक नियोग समझ में नहीं आया था तब तक खुली सम्मति देते थे और जब द्विजों के लिए नियोग की आज्ञा समझ ली तो उसकी पुष्टि में पुस्तक लिख दी। कौन नहीं जानता कि पण्डित लेखराम का अन्दर बाहर एक-सा था।

सत्य-परायणता के साथ सदाचार का तो गाढ़ा सम्बन्ध है ही न केवल यही कि पण्डित लेखराम ३५ वर्ष की आयु तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहे प्रत्युत मैं जानता हूँ कि गृहस्थाश्रम में भी ऋतुगामी रहते हुए वह ब्रह्मचारी ही थे। सदाचार से उनको बड़ा प्रेम था।

जिस प्रकार सदाचार के साथ उन्हें बड़ा था उसी तीक्ष्णता से वह दुराचार से अत्यन्त घृणा का भाव प्रकट करने से नहीं रुकते थे। यद्यपि महात्माओं के लिये महामुनि पतञ्जलि ने पाप के लिये उपेक्षा की वृत्ति धारण करने का उपदेश दिया है, परन्तु यह गुण पूर्ण योगी जनों में ही पूर्ण रूप से स्थिर होता

है। पण्डित लेखराम जैसे मध्यम श्रेणी के धार्मिक वीरों में से थे वैसे क्षात्र-धर्म्म-मिश्रित गुण भी उनमें प्रवेश किये हुए थे। धर्म्म की आड़ में अधर्म होता देख कर वह डाँट बताये बिना रह नहीं सकते थे। और आर्य्य-समाज के सभासदों को गिरे हुए देखकर तो उन्हें बहुत शोक हुआ करता था। इस सम्बन्ध में मैं उनकी नोटबुक से कुछ लेख उद्धृत करता हूँ।

सं० १८६१ ई० के जनवरी मास में पण्डित लेखराम ऋषि दयानन्द के जीवन वृत्तान्त का मसाला इकट्ठा करते हुए दानापुर (बिहार प्रान्त) आर्य्य-समाज में पहुँचे। यहाँ के विषय में उनकी गुप्त नोटबुक में दर्ज है—"दानापुर समाज का एक अफसोसनाक हाल—२७-२८ जनवरी १८६१ ई० (१) वहाँ के तमाम मेम्बर बिरादरी के डर के मारे श्राद्ध करते हैं। एक नामी मेम्बर आर्य्य-समाज के घर में उसके लड़के की शादी है। उसने २७ जनवरी की रात को एक कत्थक का नाच कराया जिसमें चन्द मुअज्जिज़ मेम्बर आर्य्यसमाज गये। भूतपूर्व मन्त्री,—उपप्रधान,—आदि। और आज २८ जनवरी बुद्धवार को उसके यहाँ रंडी का नाच है। मुझे अफसोस से मालूम हुआ कि एक मेम्बर ने आर्य्य-समाज के मन्दिर में आकर लोगों को यह न्योता दिया कि आज भी तुम चलना।

'बिरादरी का जोर तोड़ने के वास्ते मेम्बर लोग बिलकुल कोशिश नहीं करते। वैसे हालत समाज की अच्छी है। मकान भी अपना जरखरीद है, एक स्कूल भी जारी है, स्कूल के हेडमास्टर समाज के प्रधान हैं, तादाद भी एक माकूल है, हाजिरी भी माकूल होती है, २५ मेम्बर सन्ध्या करने वाले भी हैं, कुछ हवन करने वाले भी हैं, लाइब्रेरी भी खासी—लेकिन बेसूद ! (व्यर्थ)।"

इसमें सन्देह नहीं कि दुराचार से आर्य्य-पथिक को बड़ी घृणा थी परन्तु इसलिए दुराचारी पुरुष को त्याग कर उसे उसके भाग्य पर छोड़ देना वह अनार्यपन समझते थे। जब किसी आर्य्य-समाज में जाकर किसी काम करने वाले को अनुपस्थित पाते और सामाजिक सभासदों से उस पर दुराचार का आक्षेप सुनते तो सैर को चलते हुए उसके यहाँ पहुँच जाते और उसे साथ ले समझाकर गिरते-गिरते उसे बचा लेते। ऐसी कई आप बीती घटनायें लोगों

को याद होंगी। यही कारण था कि यद्यपि मुहम्मदी मत को सबसे बढ़कर दुराचार की शिक्षा रूपी विष फैलाने का साधन समझ कर उसकी जड़ उखाड़ने को उद्यत रहते थे परन्तु महम्मदी जिज्ञासुओं के साथ जो उनको प्रेम था वह उनके मित्र भली प्रकार जानते हैं और इसी प्रेम ने अन्त को उन्हें एक एक महम्मदी राक्षस की छुरी का शिकार बनाया।

यह प्रसिद्ध है कि साधारण सच्चे आदमी प्रायः क्रोधी अधिक होते हैं।

हठ और क्रोध

हठ और क्रोधकी मात्रा पण्डित लेखराम में भी अधिक थी। यों तो थोड़े ही सच्चे आदमी ऐसे देखने में आते हैं जिनमें हठ और क्रोध का अभाव हो, किन्तु जिन धर्म सेवकों को दिन-रात मूढ़ता, कुटिलता और अधर्म के साथ युद्ध करना पड़ता है उनकी हठ और क्रोध की मात्रा रुद्र रूप धारण कर लेती है। यह सौभाग्य शताब्दियों के पश्चात् किसी योगी संशोधक को प्राप्त होता है कि वह अधर्म के लिए रुद्र रूप धारण करते हुए भी क्रोध और हठ को वश में रख सके। पण्डित लेखराम योगी न थे और न ही धर्म के प्रवर्तकों में से एक, इसीलिए उन में हठ और क्रोध रूपी दोनों निर्बलतायें थीं। किन्तु हम उनके जीवन के वृत्तान्त में यह कहीं नहीं पाते कि उस हठ वा क्रोध से किसी को कुछ हानि पहुँची हो।

एक बार अजमेर के आर्य्य-समाज मन्दिर में डेरा लगाने के पश्चात् कुछ लिख रहे थे। बाबू राम विलास सार्डा जी (जो वैदिक यन्त्रालय के अजमेर पहुँचने के दिन से ही उसके संरक्षक रहे हैं) ने पूछा कि महाराज क्या लिख रहे हो।

उत्तर मिला—"वैदिक प्रेस वालों की जरा सी वेपरवाई से हमारे सिर पर आफत आ जाती है और विरोधियों को उत्तर देते-देते थक जाते हैं। देखो इस पत्थर पूजक ने एक पुस्तक लिखी है जिसने यन्त्रालय की लापरवाई से फायदा उठा कर बहुत से ऊटपटाङ्ग एतराज किये हैं। हम किस-किस का उत्तर दें; आप लोग कुछ प्रबन्ध नहीं करते।" सार्डा जी ने निवेदन किया कि गलतियां पुरानी हैं उनके संशोधन का कुछ तो प्रयत्न हो ही रहा है। इस पर क्रोध में भर कर बोले—"खाक कर रहे हो" और जो ५० वा ६० पृष्ठ लिखे

हुए थे सब फाड़ डाले। जब सार्डा जी फटे पत्र इकट्ठा करने लगे तो उन्हें भी छीन लिया। सार्डा जी उदास हो कर घर चले आये और दूसरे दिन नियमानुसार पण्डित जी को मिलने भी न गये। तब तो हमारे वीर उनके घर जाने को तय्यार हो गये। लोगों ने चपरासी दौड़ाया; सार्डा जी ने अपने न आने का कारण बतलाया तो आप गुलाब की तरह खिल गये और बोले—"ईश्वर जानता है सार्डा जी, आप आर्य्य-समाज के सच्चे प्रेमी हैं, मैं उस पत्थर-परस्त का जवाब जरूर लिखूँगा।" और फिर आपने "साँच को आँच नहीं" शीर्षक देकर शिवनारायण प्रसाद कायस्थ की पुस्तक का उत्तर लिखा जो 'कुल्लियात आर्य्य-मुसाफिर" के १७४ पृष्ठ से आरम्भ होता है। हठ तो पण्डित लेखराम में बहुत था, जिसके दृष्टान्त बचपन से ही मिलते हैं, परन्तु उस हठ का ही परिणाम

प्रतिज्ञा पालन की धुन

थी आर्य्य-पथिक ने एक बार जो मुँह से निकला उसे हठ करके भी निभाने का सदैव प्रयत्न किया। इनके अन्दर जहाँ धर्म के साथ प्रेम का भाव सर्व साधारण से कहीं बढ़ कर था वहाँ उसके निभाने के लिये आत्म-समर्पण तथा तप का भी बड़ा उच्च भाव था। इसके उदाहरण जहाँ बचपन से मिलते हैं, वहां युवावस्था में यह भाव हम यौवन पर चढ़ा हुआ पाते हैं। रिसाला धर्मोपदेशक के लिए एक-दो बार कातिब (कापी नवीस) न मिला। स्वय अभ्यास करके छापने की स्याही से कापियाँ लिखीं किन्तु रिसाले को बन्द न होने दिया।

हम देख चुके हैं कि १२ वर्ष की आयु में ही अपनी चाची को एकादशी व्रत करते देख कर स्वयं उपवास करने लग गये थे और जब तक उस पर श्रद्धा रही दृढ़ता पूर्वक इस बात को निबाहा।

ज्वर हो, फोड़े निकले हों, चलने के अयोग्य हों, पुत्र की मृत्यु का शोक हो; कोई भी आपत्ति वा विपत्ति उनको अपने कर्त्तव्य पालन से नहीं रोक सकती। उनकी दो काल की सन्ध्या के अटूट नियम की साक्षी में मेरे पास सैंकड़ों पत्र पहुँचे हैं। जब मेरे साथ शिक्रम की सवारी में लुधियाने से जगराओं

जा रहे थे तो मार्ग में पानी लेकर शौच के लिये गये। लौटने पर पता लगा कि हाथ-पैर धोने और कुल्ला करने के लिये पानी नहीं है। मैं नीचे था और पण्डित लेखराम ऊपर की छत पर थे। मार्ग में कुछ पूछने को आवाज दी, उत्तर कुछ न मिला। देखा तो आर्य्य-पथिक सन्ध्या कर रहे हैं। जब दूसरी चौकी पर शिक्रम पहुँची तो एक भाई ने पूछा—"पण्डित जी! क्या पेशावरी सन्ध्या हो चुकी।" पण्डित लेखराम ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—तुम पोप बिना पानी मिले ब्रह्मयज्ञ नहीं कर सकते। भोले भाई! स्नान कर्म्म है, हुआ वा न हुआ; परन्तु सन्ध्या धर्म है और उसका न करना पाप है।"

प्रतिज्ञा पालन में ऐसी दृढ़ता का ही परिणाम था कि धर्मवीर लेखराम धर्म में राजीनामा नहीं किया करते थे।

जहाँ लेखराम के चरित्र में हम कुछ साधारण निर्बलतायें पाते हैं, वहाँ कई प्रकार की दृढ़ताओं को पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ देखते हैं। आत्म-सम्मान और निर्भयता के लिए मान इनके मन में वर्तमान सांसारिक सीमा से भी बढ़ा हुआ था। बचपन में ही जब मदरसे में प्यास लगी तो मदरसे का घड़ा भ्रष्ट देख कर मौलवी से प्यास बुझाने के लिए घर जाने की आज्ञा माँगी। मौलवी साहेब ने फरमाया—"यहीं पीलो छुट्टी नहीं मिल सकती" हमारे आत्म-सम्मानी चरित्र नायक ने न तो फिर मौलवी से ही गिड़गिड़ा कर पूछा और नहीं भ्रष्ट घड़े से पानी पिया; सायं-काल तक प्यासे ही बिता दिया।

एक विश्वास पात्र महाशय से पता लगा कि पण्डित लेखराम मिडिल की परीक्षा में शामिल हुए थे। भारतवर्ष के इतिहास सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर सरकारी किताबों के अनुसार देने की जगह आपने उनका खण्डन आरम्भ कर दिया। जहाँ अन्य विषयों में बहुत ऊंचे अङ्क प्राप्त किये वहाँ इतिहास में शून्य प्राप्त किया। किन्तु उसी इतिहास में अनुत्तीर्ण लेखराम को पाँच वर्षों के पश्चात् पेशावर प्रान्त के हाकिमों ने जिले का इतिहास लिखने के लिए ऐतिहासिक मसाला जमा करने के काम पर लगाया था। उनके लिए धर्म्म धर्म्म था और अधर्म्म अधर्म्म वह नहीं समझ सकते थे कि आग और पानी का कैसे मेल हो सकता है। यह भाव कभी-कभी व्यर्थ छिद्रान्वेषण की अवस्था तक पहुँच जाता

था और उससे यह उपदेश के काम को (बाह्य दृष्टि से) हानि भी पहुँच जाती थी, परन्तु लेखराम अपने स्वभाव को इन छोटी हानियोंके लिए बदल नहीं सकते थे। बहुत से धर्म्मात्माओं की सम्मति है कि अपने मन्तव्यों तथा धर्म के नियमों से न गिर कर भी राजीनामा हो सकता है, परन्तु यदि यह हठ का भाव एक निर्बलता है तो हम उसे लेखराम के आचरण में छिपाना नहीं चाहते।

परन्तु इस निर्बलता का ही परिणाम था कि हन लेखराम में अवलोकन करते हैं।

अभय पद का आदर्श

आर्य्य पुरुष प्रत्येक यज्ञ की समाप्ति पर प्रार्थना करते है—

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥ अथर्व० का० १६ सू० १५। मं० ५। ६

पण्डित लेखराम न केवल इन मन्त्रों का पाठ ही करते थे, वह इन मन्त्रों में बतलाई हुई अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न भी करते थे। उनके जीवन में ऐसी घटनाएं बहुत-सी मिलती हैं जिनका वर्णन कायर हृदयों के अन्दर वीरता का संचार कर देता है।

बन्नू में जब १८६४ में पहुँचे तो सभासद आपस में इस विषय पर कानाफूसी करने लगे कि जाहिल मुसलमानों के बेजा जोश से रक्षा के लिए पुलिस का प्रबन्ध करना चाहिये। पं० जी ने यह सुन कर मन्त्री को कहा— "अगर मैं मुसलमानों से डरूं तो तो घर क्यों न बैठ रहूँ प्रचार के लिये बाहर क्यों निकलूं। पुलिस की कुछ जरूरत नहीं है।"

मालेरकोटला, जगराओं शिमला आदि की घटनाएँ अभी सैंकड़ों आर्य्यों को नहीं भूली होंगी। धर्म्म-वीर सचमुच अपनी जान हथेली पर लिये फिरते थे। इसलिये तो आर्य्य-जाति के कई भूषणों ने उनका नाम आर्य्य-समाज के अली रक्खा हुआ था और यह नाम सार्थक भी था क्योंकि मुसलमानों का खण्डन करते-करते उनमें स्वय भी कुछ "जिहादी" भाव प्रवेश कर गये थे।

वेद में लिखा है "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" कि मनुष्य सृष्टि में ब्राह्मण शरीर के मुख भाग की तुल्य हैं। जैसे मुख में पाँचों ज्ञानेन्द्रिय हैं और कर्मेन्द्रिय केवल वाणी है, इसी प्रकार ब्राह्मण का लक्षण यह है कि दिन-रात ज्ञान की प्राप्ति में लगा रहे और जैसा ज्ञान प्राप्त हो उसका यथावत् प्रचार कर दे। मुख में जो भोजन डाला जाय उसे पचने के योग्य बना कर मुख शरीर के शेष भाग में बाँट देता है; अपने लिए कुछ नहीं रखता। इसी प्रकार ब्राह्मण का धर्म है कि जहाँ अन्य वर्णों को शुद्ध आजीविका के साधन बतलाये वहाँ स्वयं अर्थ सञ्चय में न फंसे। मैं दिखला चुका हूँ कि ब्राह्मण के अन्तिम लक्षण का तो लेखराम स्वरूप ही थे, परन्तु अन्य लक्षण भी उनमें भली प्रकार घटते हैं। ज्ञान-प्राप्ति के लिये उन्हें स्नेह था।

तत्वान्दोलन में अनुराग

पण्डित लेखराम यद्यपि इङ्गलिश भाषा से सर्वथा शून्य थे और संस्कृत भी साधारण ही जानते थे, तथापि उद्यमशीलता तथा धैर्य्य की सहायता से इन भाषाओं में लिखे हुये ग्रन्थों में से भी ऐसी विचित्र (अपने मतलब की) बात निकाल लाते थे जिनका उन भाषाओं के जानने वालों को स्वप्न भी न था। यही कारण था कि आर्य्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाब तथा सजीव आर्य्य-समाजों के अधिकारियों पर जब कभी वैदिक-धर्म के सिद्धान्तों के विषय में बाहिर से प्रश्न होते तो वे उन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए, पण्डित लेखराम के पास ही भेजा करते। मुझे इस प्रकार का बहुत-सा पत्र व्यवहार मिला है जिसमें न केवल महम्मदी तथा ईसाई मत के अनुयायियों के प्रश्नों के उत्तर के लिये ही पण्डित जी को प्रेरित किया गया है प्रत्युत ऐसे प्रश्न भी उनके पास आन्दोलनार्थ भेजे गये हैं जिनका सम्बन्ध संस्कृत के गूढ़ ग्रन्थों तथा अग्रेजी के अनात्मवाद (Materialism) के साथ था। ऐसे प्रश्न-पत्रों में मुझे दो पत्र बालमुकुन्द आर्य्य के, उर्दू भाषा में लिखे हुये मिले जो उक्त महाशय ने रावलपिण्डी से आषाढ़ तथा कार्त्तिक सं० १९४० में आर्य्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के नाम भेजे थे। इन पत्रों से विदित होता है कि उन दिनों भी बहुत से आर्य्य-समाजी बिरादरी मुकाबिले की शक्ति न रखते हुये ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से ही जन्म को वर्ण-व्यवस्था का निर्णायक सिद्ध करने के

प्रयत्न किया करते थे और ऐसा करने के लिये आजकल के थियासोफ़िस्टों (Theosophists) से भी बढ़ कर दयानन्द के शब्दों की खींच तान किया करते थे।

अंग्रेजी ग्रन्थों से प्रमाण ढूँढ़ने की इन्होंने विचित्र विधि निकाली। जब किसी ऐसे अंग्रेजी पढ़े के यहाँ जाते जिन्हें ग्रन्थावलोकन में अनुराग दिखाई देता तो पण्डित जी का पहिला प्रश्न उससे यह होता—"सुनाइये कोई नयी किताब पढ़ी।" यदि उसने किसी नयी किताब का नाम बतलाया तो जब तक उससे उस पुस्तक के सारे विषय न पूछलें उसकी जान न छोड़ते, और जो बात उन्हें अपने मतलब की मालूम होती उसी भद्र पुरुष से अपनी नोट बुक में लिखवा लेते। फिर वह लिखी हुई इबारत दूसरे ग्रेजुएटों से पढ़वा और एक दूसरे क किये अर्थो को आपस में मिला कर निश्चय करते कि वह प्रमाण किस काम में आ सकेगा। किन्तु उस पहले नोट की यहीं समाप्ति न होती। जिस-जिस नये अङ्गरेजीदां से मिलते उसी विषय पर उसके विशेष पढ़े पढ़ाये हुए का स्मरण दिला कर जितने नये प्रमाण उस विषय पर मिलते उन्हें इकट्ठा करते जाते।

इस सम्बन्ध में मुझे एक मनोरञ्जक वृत्तान्त याद आया है जो स्वर्गवासी धर्मात्मा विश्वासी लब्भूराम बी० ए० ने मुझे सुनाया था। "मौत के पश्चात् का दिन" (The day after death) नामी लूइसफिग्योर कृत पुस्तक उन्हीं दिनों अधिक प्रसिद्ध हुई थी और पण्डित जी अपनी "मसल-ए-तनासुख" (पुनर्जन्म) नामी पुस्तक के लिए नोट तय्यार कर रहे थे। आपने 'फिग्योर' की पुस्तक में से पुनर्जन्म सम्बन्धी एक उदाहरण किसी से नकल कराया हुआ था जो लब्भूराम जी को दिखाया और अर्थ करने को कहा। लब्भूराम जी ने साफ़ अर्थ कर दिये जिससे पण्डित जी का पूरा मतलब सिद्ध न हुआ; अर्थात् लुइस फ़िग्योर उच्चयोनि से नीचे योनि में गिरना नहीं मानता था। पण्डित जी बोले—'भाई जरा संभल कर अर्थ करो। यह अर्थ कैसे हो सकते हैं। मनुष्य से जहाँ देव योनि में जाना मानता है तो नीच पशु योनि में जाना भी मानता होगा।" लाला लब्भूराम ने फिर वही अर्थ किये जिस पर पण्डित जी खिसियाने हो कर बोले—खाक अगरेजी पढ़े हो! आपने बी० ए० की

ही मिट्टी खराब की। यह अर्थ भला कैसे हो सकते हैं।" लब्भूराम जी वक्ता थे रसीले, बोले—"पण्डित जी! अर्थ तो वही है जो मैंने किये, मगर आपके डण्डे के डर से आपकी ही सी कह दें।" पण्डित जी का गुस्सा हिरन हो गया और मुसकरा कर बोले—ईश्वर जानता है! लब्भूराम जी आप बड़े होनहार हैं। इन योरोपियनों को अभी पूरी समझ नहीं आई रफ़्तः रफ़्तः (शनैः शनैः) समझ जायेंगे।"

इसमें सन्देह नहीं कि पण्डित लेखराम जिस लक्ष्य (अर्थात् वैदिक-धर्म के सिद्धान्तों की पुष्टि) को सामने रख कर आन्दोलन किया करते थे, वह उन्हें किसी-किसी समय अप्रामाणिक बातों क लिए भी प्रमाणों की कमी नहीं छोड़ता था, परन्तु अपनी पुस्तकों में उन्होंने वही प्रमाण लिखे हैं जिनकी पुष्टि अकाट्य प्रमाणों से हुई। उदाहरण के लिए एक ही दृष्टान्त लीजिये जो पण्डित लेखराम की ऐतिहासिक खोज प्रणाली पर प्रकाश डालता है।

पण्डित लेखराम ने दो भागों में "तारीख-ए-दुनिया" नाम की एक लघु पुस्तक लिखी थी। उसमें विविध संवतों का वर्णन करते हुए उन्होंने आर्य्य-ग्रन्थों के लिखे जाने के समय भी निश्चित किये हैं। पुस्तक का आधार उन नोटों पर प्रतीत होता है जो उक्त पण्डित जी की नोट बुक में मिले हैं। पण्डित जी की आन्दोलन प्रणाली यह थी कि पहले प्रतिज्ञा रूप से उस सिद्धान्त को लिख लेते थे जो उन्हें सिद्ध करना अभीष्ट होता, फिर जिन जिनके लिए प्रामाणाधार मिलता उसको रख कर शेष को काट देते। उनके नोटों में पहले वेदों के निर्माण का समय १ अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५२ हजार ९ सो ८९ वर्ष देकर, उपनिषदों का समय इस प्रकार लिखा है—

प्रथम मन्वन्तर - ईशोपनिषद।

दूसरा मन्वन्तर—केन।

तीसरा मन्वन्तर—कठ, प्रश्न।

चौथा मन्वन्तर—मुंक, माण्डूक्य।

पाँचवाँ मन्वतर—ऐत्तरेय, तैत्तिरीय।

छठा मन्वन्तर—छान्दोग्य।

सातवाँ मन्वन्तर—बृहदारण्यक, तथा मनु-
स्मृति का निर्माण समय
१,८०,००००० वर्ष

ऊपर के लेख के लिए जब कोई आधार न मिला तो ऊपर के पाँचों मन्वन्तरों को लकीर में घेर कर लिख दिया—"छठे मन्वन्तर की तसनीफात" और शायद जब इसके लिए भी कोई ऐतिहासिक लेख-बद्ध प्रमाण न मिला तो "तारीख दुनिया" में उपनिषदों के निर्माण काल पर कोई विस्तृत विचार ही न किया।

पण्डित लेखराम ने एक स्थान में आर्य्यावर्त्त सम्बन्धी सब इतिहास ग्रन्थों की सूची लिखी थी और मेरे साथ मिल कर वह अङ्ग्रेजी, आर्य्य-भाषा, उर्दू—तीनों भाषाओं में एक प्रामाणिक भारतवर्ष का इतिहास तय्यार करना चाहते थे।

पं० लेखराम के छोड़े नोट विचित्र "चाउ-चाउ का मुरब्बा" है। कहीं तोपों के निर्माण काल का पता लगा कर उसका रामायण के काल से मुकाबिला कहीं "खुदा की हस्ती के सबूत" में नौ प्रबल युक्तियों का खुलासा, कहीं दिल्ली के लाट के वर्णन से आर्य्यों के शिल्पकारी की प्रशसा, कहीं कुरान की आयतों की पड़ताल, कहीं समयानुकूल प्रयोग के लिए उद्धृत कवितायें, कहीं फीरोजशाह के अत्याचारों के प्रमाण की फुलझड़ी कहीं महम्मदियों के ७२ नहीं बल्कि ७८ फिरकों की सूची, कही सुकृतपन्थ के फारसी संस्कृत मिश्रित मूल-मन्त्र, कहीं लाला साईंदास, लाला जीवन दास, लाला रघुनाथ सहाय, मुन्शी दुर्गा प्रसाद, मुंशी केवल कृष्ण, थम्मनसिंह ठाकुर, लाला मुल्कराज मल्ला, हकीम बहाउद्दीन इत्यादि के बतलाये नुस्खे सांप के काटे से लेकर सन्तान उत्पत्ति तक के इलाज के लिए और कहीं वेद शास्त्रों के प्रमाणों की पञ्जिका—कहाँ तक लिखें, संसार में ऐसा कोई विषय नहीं जिसका खोज करना लेखराम के कार्य की सीमा से बाहर समझा जा सकता।

तारीख दुनिया में वर्तमान सृष्टि की आयु (४,३२,००,००,०००) चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष लिखी है। इसके लिए प्रमाण में अथर्ववेद, प्राठक ८, अनुवाक १, मन्त्र २१ पण्डित लेखराम ने पेश किया है—

शतं तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृराम ।।

आर्य्य जनता का प्रायः यह निश्चय है कि पण्डित लेखराम वेद तथा अन्य शास्त्रों के प्रमाण औरों से ढुंढ़वा कर लिखा करते थे। यह बात कैसी निर्मूल

है, इसको सिद्ध करने के लिए मैं ऊपर लिखित अथर्ववेद के प्रमाण के विषय में श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी सामवेद भाष्यकार को पत्र देता हूँ। उक्त पण्डित जी लिखते हैं—

"सं० ३१०१, ता २०-८-१६००

श्रीमन्महाशय ! नमस्ते-आपके १८-८-१६०० के लेखानुसार यद्यपि पण्डित लेखराम बहुत बार मिले परन्तु केवल एक बार की बात जीवन चरित्र में लिखने योग्य है कि वे अपने विश्वास के ऐसे दृढ़ थे कि सन् ६० (कुम्भ १८६१ के अप्रैल में था) कुम्भ के मेले हरिद्वार पर आवश्यक होने पर मूल-वेद को प्रतिज्ञा के साथ खोजने लगे तो एक अथर्व (वेद) का मन्त्र तत्काल कल्प वर्ष सख्या परक ढूँढ़ लिया। यद्यपि संस्कृत नहीं जानते थे, (तथापि) वह मन्त्र पण्डितों से पूछा तो उसका वही तात्पर्य्य निकला।" उपनिषदों को वेद-मूलक ही सिद्ध करने के लिये उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया था और उपनिषदों में जो मूल-वेद का भाग है उसे मोटे अक्षरों में छपवा कर यह दिखलाने का विचार था कि जैसे उपनिषद वाक्यों को हटा लेने से गीता का कुछ नहीं बचता वैसे ही वेद मन्त्रों की प्रतीकें अलग करने से उपनिषद समझ में नहीं आ सकतीं।

कहाँ तक लिखा जाय, सच्चे ब्राह्मण का यह लक्षण पण्डित लेखराम में कूट-कूट कर भरा हुआ था। दूसरा लक्षण ब्राह्मण का यह है कि जिस धर्म का निर्णय स्वयं किया हो उसको संसार में निष्कपट होकर फैलावे। इसीलिये

आदर्श धर्म प्रचारक थे।

आर्य्य-पथिक की मौखिक प्रचार में धूम मची हुई थी। आर्य्य समाज में उन धर्म-प्रचारकों की संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है जो लेखराम के समीप इस अंश में पहुँच सकें। गृहस्थी होते हुए भी संन्यास की तितिक्षा तथा धारणा हम उनके आचरण में देखते हैं। विरोधी लोग प्रसिद्ध करते हैं कि पण्डित लेखराम बदजबान था। यद्यपि वह खण्डन सर्वमतों का एक सा करते थे, परन्तु हिन्दुओं, जैनियों, सिक्खों ने उनकी कभी शिकायत नहीं की। इसका कारण तो यह हो सकता है कि यद्यपि इन मतों के संशोधन के लिये इन मतावलम्बियों को हिलाते थे तथापि आर्य्य-जाति विरोधियों के आक्रमणों से

इनको भी बचाने का ठेका लेखराम ने ही ले रक्खा था। एक बार मैं और पण्डित लेखराम इकट्ठे दिल्ली से लौट रहे थे कि मार्ग में सनातन धर्म-सभा के पण्डित दीनदयाल जी मिल गये। बातचीत आरम्भ होने पर पण्डित लेखराम ने कहा—"आप हमें कोसने के लिये बड़े बहादुर-हो लेकिन इसलाम आपके धर्म की जड़ें खोद रहा है और आप चुप बैठे हो।" पण्डित दीनदयाल जी ने उत्तर दिया—"यह काम तो हम सबने आपके सुपुर्द कर छोड़ा है; जब तक आर्य्य-मुसाफिर जीवित हैं तब तक हमारे धर्म की जड़ कौन खोद सकता है।"

यह तो ठीक है कि हिन्दू, जैन, सिक्खादि तो उन्हें अपना समझ कर उनके कटु वचनों को सहन कर लेते थे, परन्तु यदि वह कटु भाषी होते तो मुसलमान जनता भी क्यों उनके व्याख्यानों पर मोहित होती। असल बात यह थी कि महम्मदी मौलवियों ने उनके पते की कहने और लिखने पर, उत्तर देने की शक्ति न रखते हुए, उन्हें "बदजबान" प्रसिद्ध कर रक्खा था। परन्तु जब ऐसी बहकाई हुई भी मुसलमान जनता लेखराम से प्रत्यक्ष परिचय करती तो उस पर आर्य्य-पथिक का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

जहाँ दूसरे वक्ताओं के एक घण्टे के व्याख्यान के पश्चात् श्रोता घबरा जाते हैं वहाँ तीन घण्टों तक आर्य्य-पथिक की वक्तृता सुनने के पश्चात् भी फिर एक घण्ट बैठने को तैयार रहते थे। इसका कारण उनका विस्तृत ऐतिहासिक ज्ञान तो था ही परन्तु उनकी वाणी में हास्य रस और हाजिर जवाबी ऐसी मनोहर थी कि सुनने वाला उकता नहीं सकता था।

हाजिर जवाबी में कमाल

जो पुरुष किसी बड़े काम में कृतकार्य होना चाहें उनके लिये "हाजिर जवाबी" एक अपूर्व सम्मिलित अस्त्र-शस्त्र है। जिस बात को दलील से काटने में घण्टों का नाश हो उस बात का "हाजिर जवाबी" मिनटों में सफाया बोल देती है।

लेखराम बचपन से हाजिर जवाबी के लिये प्रसिद्ध थे। मदरसे में पहले साल ही परीक्षक इनकी हाजिर जवाबी से प्रसन्न हुए थे। इनके पहले उस्ताद तुलसीराम जी इसी हाजिर जवाबी से तङ्ग थे, जिसके कारण इनकी अकल की शिकायत किया करते। इस कहानी में भी कई स्थानों पर मैंने उनकी

हाजिर जवाबी के नमूने दिये हैं। परन्तु उनकी हाजिर जवाबी को पढ़कर ऐसा आनन्द आता है और हमारे चरित्र नायक के इतने गुणों का पता लगता है कि उनमें से कुछ और का उल्लेख करना मनोरञ्जक ही न होगा प्रत्युत शिक्षा दायक भी सिद्ध होगा।

हरद्वार में संवत् १९४८ के कुम्भ पर स्वामी आत्मानन्द जी ने संयुक्त प्रान्त के छूतछात वाले उपदेशकों का चौका स्थिर रखने के लिये यह प्रबन्ध किया कि पंजाबियों से पहले वह चौक में भोजन कर लिया करें। पण्डित लेखराम उनसे भी पहले भोजन के लिये जा बैठे। अब पंजाबियों का अपवित्र किया हुआ चौका फिर से लगाया गया। दूसरे दिन भी पण्डित लेखराम पाचक (रसोइए) के साथ वाली क्यारी में जा बैठे, परन्तु जब रोटी को बिना अधिक सेके उसने चूल्हे में से खींचा तो आपने उसकी पीठ पर हाथ ठोंका और उसके हाथ से चिमटा लेकर उसे रोटी सेंकना बताने लगे। अब तो संयुक्त प्रान्तीय दल में खलबली मच गई, परन्तु कुछ संयुक्त प्रान्ती उसी समय आर्य्य-पथिक के चेले बन गये और सखरी निखरी के भेद-भाव को उड़ा दिया।

दिल्ली के जलसे पर एक आदमी केशर का चन्दन सब भाइयों के माथे पर लगाता आता था। जब आर्य्य-पथिक के समीप आया तो उन्होंने डांट कर कहा—"मेरे सिर में दर्द नहीं है।" उत्तर मिला—"महाराज! सुगन्धि के लिये लगाते हैं।" आर्य्य-पथिक ने दाहिने हाथ का पृष्ठ भाग सामने करके कहा—"तो यहाँ लगाओ" और जब वहाँ चन्दन लगाया गया तो नाक के पास ले जाकर सूंघने लगे; जिस पर सब उपस्थित सज्जन मुसकिरा दिये।

एक आर्य्य सज्जन ने भोजन के पश्चात् सब आर्य्य भाइयों को ताम्बूल (पान) बांटे। जब आर्य्य-पथिक के सामने पानदान पेश किया तो बोले—"देखते नहीं हो मैं मनुष्य हूँ, बकरा नहीं हूँ कि पत्ते खाऊँ।" गुजरात आर्य्य समाज में आर्य्य-पथिक का व्याख्यान हो रहा था। मुसलमानों के 'हराम, हलाल" के मसले पर बोल रहे थे। समाप्ति पर प्रश्नोत्तर का समय दिया गया। दो मौलवियों को तो यों ही झिंझोड़ दिया परन्तु अन्त में मौलवी बाकरहुसैन उठे जिनकी ऋषि दयानन्द के साथ भी पुनर्जन्म पर बातचीत हो चुकी थी। मौलवी साहेब ने कहा—"पण्डित साहेब! आपने जो हमारे हराम

हलाल के मसले पर एतराज (आक्षेप) किये हैं; क्या आपने यह भी सोचा है कि हमारे मजहब में चुहिया हराम है। क्या वह भी इसीलिए हराम करार दी गई कि जबरदस्त थी?' आर्य्य-पथिक ने पूछा कि मौलवी साहेब सुन्नी हैं वा शिया। यह उत्तर पाने पर कि मौलवी साहेब शिया हैं पण्डित लेखराम ने उत्तर दिया—"मौलवी साहब! मुझे आपका कथन सुनकर हंसी आती है। आप शिया होकर चूहे की बुजुर्गी और जबरदस्ती से इनकार करते हैं। यही नामुराद चूहा था जिसने मैदान कर्बला में सब पानी की मशकें काट दीं, और बेचारे इमाम हुसैन को प्यासा मरवाया। अगर ऐसे दो तीन और जबरदस्त पैदा हो जायें तो अरब और ईरान में कई कर्बला की सी घटनायें हो जायें।" श्रोतागण खिलखिला कर हंस पड़े और मौलवी साहेब चुप हो गये।

लेखनी का प्रवाह

धर्म-वीर आर्य्य-पथिक ने अपने नाम को सार्थक करने के लिये विचित्र लेखनी चलाई। लेखराम सचमुच लेख की लहर चला देता था। संवत् १९४१ में लेखराम ने दासत्व से मुक्ति लाभ की। सम्वत् १९५३ के अन्त में उनका देहान्त हुआ। १२ वर्षों में उन्होंने जहाँ लाखों नरनारी तक वैदिक धर्म का सन्देश पहुँचाया, और सैकड़ों छोटे-बड़े लेख लिख कर आर्य्य गजट फिरोजपुर, सद्धर्म्म प्रचारक तथा अन्य समाचार पत्रों में छपवाये, सैकड़ों शास्त्रार्थ किये और सहस्रों को धर्म से पतित होते-होते बचाया, वहाँ ३३ छोटी बड़ी पुस्तकें तय्यार कीं जिनके छपे हुए, सत्यार्थ-प्रकाश के परिमाण के, पृष्ठ २९०० से कम न होंगे और इसके साथ ही ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र के लिये न केवल ८७९ बड़े पृष्ठों के लिये लेख तैयार करके ही छोड़ गये, प्रत्युत पुस्तक की पूर्ति के लिये भी इतने नोटों का कोष जमा कर दिया कि उन सबसे पूरा काम लेना भी कठिन हो गया।

एक विशेष कापी मिली है, जिसका शीर्षक है—"आर्य्य-समाज की बीस साला रिपोर्ट।" इसके अन्दर १४ बड़े-बड़े विषयों की सूची है, जिससे ज्ञात होता है कि जो कार्य्य "आर्य्य डाइरेक्टरी" का आज कुछ-कुछ होने लगा है उसको आर्य्य-पथिक वर्षों पहले पूर्ण रीति से करने का विचार कर रहे थे।

भविष्य पुराण की पड़ताल मैंने उन्हीं की प्रेरणा पर आरम्भ की थी

और विचार यह था कि हम दोनों १८ पुराणों तथा १८ ही उपपुराणों की पड़ताल का परिणाम जन-साधारण के आगे रक्खेंगे। ऋषि जीवन का चरित्र छपवाने के पश्चात् उनका विचार अरब आदि देशों में प्रचार के लिए जाने का था। इसके लिए उन्होंने आर्य्य-समाज के दस नियमों का भाष्य अरबी में लिख लिया था जो मेरे पास मौजूद है और १६ लघु पुस्तकों की सूची भी बना ली थी जिन्हें अरबी में छपवा कर वह साथ ले जाना चाहते थे। यह लेखनी का प्रवाह बड़ा ही प्रबल है। परन्तु कहा यह जाता है कि कि धर्म-वीर पण्डित लेखराम की "तहरीर सख्त' थी। यदि इसका मतलब यह है कि उनकी लेखनी ओजस्विनी और बलवती थी तो मुझे भी मानने में कोई सङ्कोच नहीं, क्योंकि जिस लेख का आधार सचाई पर हो और जो केवल अपने मन्तव्यों की रक्षार्थ लिखे गये हों उनका शक्तिशाली होना आवश्यक ही है। परन्तु यदि आक्षेपको की यह प्रतिज्ञा है कि पण्डित लेखराम की लेख शैली महम्मदी तथा अन्य आर्य्य समाज के आक्षेपों की न्याईं अश्लील और असभ्य होती थी तो कहने में कोई सङ्कोच नहीं कि ऐसी प्रतिज्ञा निर्मूल और झूठी है। मेरी तो यहाँ तक प्रतिज्ञा है कि पण्डित लेखराम अपने लेखों में कभी मर्यादा का भी उल्लङ्घन नहीं करते थे; तभी तो जब-जब न्यायालयों में उनकी पुस्तकें पेश हुईं तब-तब ही उनके विरोधियों को पराजित होना पड़ा। महम्मदी मौलवियों को उन्होंने युक्ति, प्रमाण तथा सत्यान्दोलन से ऐसा परास्त कर दिया था कि उन्होंने अमली तौर पर अपनी हार मान ली और जिस लेखनी को उनकी सम्मिलित शक्ति जवाबी लेखों तथा न्यायालयों की सहायता से भी बन्द न करा सकी उसे कायर छुरी के द्वारा बन्द करा दिया।

महम्मदियों के आक्रमण

(१) सबसे पहले १८८७ ई० में अमृतसर में "तकजीब" और "नुसखा" के छपने पर मुसलमानों ने बड़ी हलचल-मचाई परन्तु वकीलों ने नालिश की सम्मति न दी।

(२) सबसे पहला वास्तविक आक्रमण मिर्जापुर के मुसलमानों ने किया। शुक्रुल्ला नामी व्यक्ति की ओर से "तकजीव बुराहीन अहमदिया" तथा "नुसखा-खब्त अहमदिया" को मुसलमानों का दिल दुखाने वाली किताबें करार देकर मजिस्ट्रेट जिला के यहाँ अर्जी दी। यह अभियोग बिना पण्डित लेखराम को बुलाये खारिज हो गया।

(३) प्रयाग में भी ऐसी नालिश हुई जो बिना अभियुक्त पुरुषों को बुलाये खारिज हुई।

(४) फिर लाहौर के मुसलमानों ने सं० १८९३ ई० के आरम्भ में "जिहाद" तथा अन्य पुस्तकों को लेकर, जो अरोड़ वंश प्रेस में छपी थीं और उनमें अश्लील लेख बतला कर, नालिश की। इस मुकद्दमे में लाला लाजपत-राय जी ने बड़ी पैरवी की और मुकद्दमा खारिज हुआ।

(५) फिर मेरठ के मौलवियों ने भी बड़े जलसे किये और महम्मदी जगत् को भड़काया, परन्तु वहाँ भी नालिश करने की सम्मति वकीलों ने न दी।

(६) दिल्ली में नालिश की गई। यह नालिश २८ अगस्त, १८९६ कोस कप्तान डेविस साहब डिपुटी कमिश्नर देहली की अदालत में पेश हुई। डेवि

साहेब ने वे सब पुस्तकें मंगा कर सुनीं जिनके उत्तर में पण्डित लेखराम ने पुस्तकें लिखी थीं और बिना ग्रन्थकर्त्ता तथा छापने वाले को बुलाये नालिश खारिज कर दी ।

तब मुसलमानों के बड़े पुर जोश जलसे हुए, बहुत-सा धन एकत्र हुआ और कप्तान डेविस साहेब के हुकुम की निगरानी की गई । वह निगरानी फिर १० सितम्बर १८९६ को खारिज हुई । इस अन्तिम फैसले में साहब मजिस्ट्रेट ने लिखा—'यह मुकद्दमा मजहबी बुनियाद पर उठाया गया है । सारे शहर में जलसे किये गये और सब प्रान्तों से मुसलमान बुलाये गये हैं जिससे आज न्यायालय में जमा हो कर अपनी सहानुभूति प्रकट करें ।..

"इस स्थान में यह बतलाना आवश्यक है कि पण्डित लेखराम आर्य्य अग्रणियों में से एक हैं.........अब इस प्रश्न के विषय में कि क्या यह पुस्तक अश्लील है वा नहीं, मैंने वे सब विशेष-विशेष वाक्य अवलोकन किये जिन्हें अश्लील बतलाया जाता है । यह बात विचारणीय है कि इनमें बहुत अधिक तो ऐसे वाक्य हैं जो कि अश्लील कहे ही नहीं जा सकते । दूसरों में प्रश्न यह है कि शब्दों का किस प्रकार से प्रयोग हुआ है .....मेरी सम्मति में पुस्तक के शब्द इन (अश्लील वा असभ्य) अर्थों में नहीं लिए जा सकते .....मै निश्चय करता हूँ कि कोई भी जुर्म (अपराध) लेखराम......के विरुद्ध प्रकट नहीं किया गया और इसलिए अभियोग को "जाबिता फौजदारी" की धारा २०३ के अनुसार खारिज करता हूँ ।"

(७) दिल्ली से निराश हो कर मुसलमानों ने बम्बई में बड़ी हलचल मचाई और दिसम्बर, १८९६ में वहां नया अभियोग चलाया । जब वह अभियोग भी बिना पण्डित लेखराम को बुलाये खारिज हो गया तब—

(८) पेशावर में धर्मवीर लेखराम रूपी ज्वलन्त शक्ति को जो इस अदूरदर्शी दृष्टियों में इसलाम की जड़ों को खोखला कर रही थी, सदा के लिए शान्त करने का यत्न सोचा गया । पेशावर में दिल्ली का मुकदमा खारिज होते ही आग भड़की थी । यद्यपि पहले नालिश का ही विचार था, परन्तु जब बम्बई

के अभियोग की भी समाप्ति का समाचार आया तो फिर पेशावर, बम्बई, अमृतसर, पटना इत्यादि सब नगरों से यह समाचार आने लगे कि मुसलमान पण्डित लेखराम को मरवा देने के मन्सूबे बाँध रहे हैं।

आर्य्य भाइयों ने विविध स्थानों से सचेत करने के लिए लाहौर आर्य्य-समाज को पत्र भेजे परन्तु, लेखराम की रक्षा कौन कर सकता था। धर्म वीर ने डर का शब्द ही अपने कोष से निकाल छोड़ा था, वे मनुष्यों की धमकियों की क्या परवा करते थे।

धर्म पर बलिदान

फरवरी, १८९७ के मध्य भाग में एक काला, गंठे हुए बदन का भयानक, नाटा युवक दयानन्द कालिज में पण्डित लेखराम को पूछता गया; वहाँ से पता लेकर वह पण्डित लेखराम के निवास स्थान पर पहुँचा और पण्डित जी से निवेदन किया कि वह असल में हिन्दू था, दो वर्षों से मुसलमान हो गया है और अब शुद्धि के लिए आर्य्य-पथिक की शरण में आ गया है। पण्डित लेखराम ने प्रतिज्ञा की कि वह उस पतित को शुद्ध कर लेंगे।

पण्डित लेखराम को कई स्थानों के आर्य्य-भाई सचेत कर चुके थे कि महम्मदी लोग उनके मरवा डालने की फिक्र में लगे हुए हैं, परन्तु ऐसी चेतावनियों का पण्डित लेखराम पर उलटा असर हुआ करता था; उन्होंने इस अनजाने व्यक्ति के विषय में पता भी न लगाया कि वह कौन और कहाँ से आया है, और न उस ही से कुछ पूछा। कुछ आर्य्य भाइयों ने पता लगाना चाहा जिनसे उसने अपने आपको बङ्गाली बतलाया, परन्तु प्रत्येक ८ शब्दों में से केवल दो बङ्गाली शब्द समझ सकता था। जिसने उसकी शकल देखी, बिना सोचे कह दिया कि वह बूचड़ है। अनुमान होता था कि वह पटना प्रान्त का रहने वाला है।

यह पटनवी बूचड़ छायावत् पण्डित लेखराम के साथ फिरता रहा। दो तीन बार पण्डित जी के घर में रोटी खाता भी देखा गया। दिन को वह पण्डित जी के साथ रहता था, परन्तु यह किसी को पता न था कि रात कहाँ काटता है। धर्म-वीर के बलिदान के पश्चात् पुलिस के आन्दोलन के समय पता लगा था कि वह रात को उस स्थान में सोता था जहाँ कि लेखराम के वध के मन्सूबे गाँठे जाते थे।

१ मार्च को पण्डित लेखराम सभा की आज्ञानुसार मुलतान पहुँचे जहाँ ४ मार्च तक ४ व्याख्यान दिये। सभा ने सक्खर जाने के लिए तार भेजा परन्तु प्लेग के कारण मुलतान समाज के सभासदों ने वहाँ जाने से रोक लिया; उनको क्या मालूम था कि वे सन्दिग्ध कष्ट से बचा कर अपने वीर धर्मोपदेशक को सीधा मौत के मुँह में भेज रहे हैं। फिर पण्डित लेखराम मुजफ्फरगढ़ के लिए तय्यार हुए, परन्तु न जाने क्यों सीधे लाहौर को लौट पड़े जहाँ वह ६ मार्च की दोपहर को पहुँच गये।

४ मार्च को ईद का दिन था। इससे बढ़ कर, महम्मदी मत की जड़ खोखली करने वाले को, वध करने का श्रेष्ठ दिन कब मिल सकता था। उस दिन बूचड़ घातक ने आर्य्य-पथिक के निवास-स्थान, आर्य्य-प्रतिनिधि सभा के कार्यालय तथा रेलवे स्टेशन पर १८ वा १९ चक्कर काटे। ६ मार्च के प्रातः फिर पण्डित जी के घर पहुँचा, वह अभी लौटे न थे; फिर सभा के कार्यालय में गया परन्तु वहाँ से भी निराश लौटा।

७ बजे पण्डित लेखराम के साथ सभा के कार्यालय में फिर पहुँचा। गली की ओर मुँह करके खिड़की में बैठ गया। वह उस दिन थूकता बहुत था। सभा के मुनीम ने कहा—"पण्डित जी! यह स्थान खराब करता है।" भोले आर्य्य-पथिक बोले—"भाई! बैठा रहने दो; तुम्हारा क्या लेता है।"

उस दिन नियम विरुद्ध सारा शरीर कम्बल से ढके हुए था। सभा से चलते समय काँपा। पण्डित जी ने पूछा कि ज्वर तो नहीं है। धीरे से बोला—"हाँ और कुछ दर्द भी है।" पण्डित लेखराम उसको इलाज के लिए डाक्टर विष्णुदास के पास ले गये। नाड़ी देख कर डाक्टर ने कहा—"बुखार बुखार तो मालूम नहीं होता, इसका खून जोश में है और थकान मालूम होती है, यदि दर्द है तो ब्लिस्टर लगा दिया जावे।" घातक ने कहा कि लगाने की नहीं, कोई पीने की दवा दीजिये। यदि उस समय कम्बल उतार, उसके दवाई लगवाने का विचार होता तो कमर में लगी छुरी पकड़ी जाती। परन्तु आर्य्य-पथिक तो स्वयं बलिदान की तय्यारी कर रहे थे, सिफारिश की कि पीने की दवाई ही दी जावे। डाक्टर ने कहा कोई शरबत पी लेवे। न जाने कहाँ से शरबत पिलवा कर बजाज की दूकान पर गये और इसी घातक के हाथ एक

थान माता जी को दिखाने भेजा बजाज ने घातक के चले जाने पर कहा— "पण्डित जी ? क्या भयानक आदमी साथ लिए फिरते हो ।" धर्म वीर, शुद्धि की धुन में मस्त, उत्तर देते हैं—"भाई । ऐसा मत कहो; यह धर्मात्मा आदमी है, शुद्ध होने आया है ।" घर जा कर पण्डित जी जिस खुले बरामदे में काम करते थे वहाँ चारपाई पर बैठ कर जीवन चरित्र सम्बन्धी काम करने लगे । उनकी बाईं ओर कुर्सी पर घातक बैठ गया । ६ बजे लाला जीवनदास और लाला केदारनाथ जी आये और अगले रविवार के लिए व्याख्यान की प्रतिज्ञा करा के चले गये । घातक बैठा रहा । माता जी रसोई में थीं, धर्म-पत्नी जी दूसरे कमरे में अलग पढ़ रही थीं । तब पण्डित लेखराम ने घातक को कहा— "अब देर हो गई है, भाई ! तुम भी आराम करो ।" घातक न हिला । दस मिनटों के पीछे माता जी ने चौके से कहा—'पुत्र लेखराम, तेल नहीं आया ।" पण्डित लेखराम उस समय ऋषि दयानन्द की मृत्यु का अन्तिम दृश्य खींच रहे थे; पत्रे वही रख दिये और चारपाई पर से उस ओर उतर कर जिधर घातक बैठा था, अपने अभ्यासानुसार आँख बन्द कर और दोनों बाहें ऊपर उठा कर जोर से अङ्गड़ाई लेते हुए कहा—"ओफ्-फोह ! भूल गया ।"

इस समय आर्य्य-पथिक ऐसे सीना तान के खड़े हुए कि जिस समय की घात में दुष्ट घातक प्रतीक्षा कर रहा था, वह आन पहुँचा । एक दम से अभ्यस्त हाथ ने छुरी पेट के अन्दर सेड़घां कर इस प्रकार घुसा दी कि आठ, दस घाव अन्दर आये और अन्तड़ियाँ बाहर निकल पड़ीं ।

परन्तु क्या आर्य्य-पथिक इस निष्ठुर, पिशाच के आक्रमण से विवश हो कर गिर पड़े और अपनी चिल्लाहट से मुहल्ले को जगा दिया ? वहाँ न कोई हृदय वेधक आर्तनाद ही सुनाई दिया और न कोई चिल्लाहट की आवाज माता और धर्म-पत्नी ने सुनी । यदि धर्म्म वीर में यह निर्बलता होती तो लोग दौड़ पड़ते और घातक उसी समय पकड़ा जाता । परन्तु वहां पतितों पर दया का भाव अभी तक स्थिर था जिसने घातक को स्पष्ट बचा दिया ।

अन्तड़ियों का बाहर निकलना था कि बायें हाथ से बाहर निकली हुई अन्तड़ियों को सम्भाल दाहिने हाथ को घातक के हाथ पर डाल दिया । साधारण पुरुष अपने रक्त के दर्शन मात्र से होश गंवा बैठता है, परन्तु वीर

लेखराम सिंह पुरुष था। बाँह के अन्दर चाहे रक्त की नदी बह जाय उसकी सावधानता में मद नहीं आता। पहली झपट में लड़ते-भिड़ते सीढ़ी के पास जा पहुँचे और घातक के हाथ से छुरी छीन ली। घातक के दो हाथ और धर्म-वीर का केवल एक, और फिर रक्त की धारा बह रही; सम्भव था कि घातक फिर छुरी छीन ले कि लक्ष्मी देवी ने, झूठी लोक लज्जा को परे फेंक कर, हाथ जा मारा और छुरी धर्म-वीर के हाथ में रह गई। लक्ष्मी देवी ने इस डर से कि कहीं जब तक फिर आक्रमण न करे धर्म-वीर को रसोई की ओर खींचा परन्तु घातक के दुष्ट हृदय को इस पर भी सन्तोष न हुआ और वह खूनी आँखों से डराता हुआ फिर पीछे दौड़ने लगा। फिर माता जी ने दोनों हाथों से उसे पकड़ लिया। इस समय घातक भी हाँपने लग गया था और उसने पास पड़ा एक बेलन झपट कर उठा माता जी के दो तीन चोटें लगाईं। वह अचेत हो कर भूमि पर गिर पड़ीं और घातक सीढ़ियों से नीचे न जाने कहां लुप्त हो गया।

कुछ पलों के पश्चात् लाला जीवनदास जी बाहर से लौटे तो बड़ा हृदय विदारक दृश्य देखा। चारपाई पर धर्म-वीर सिंह लेटे हुए हैं; अन्तड़ियाँ एक हाथ से दबाये हुए हैं और रक्त का स्रोत बह रहा है। वृद्ध जीवनदास जी घबरा गये। फिर और लोग आ गये। परन्तु आर्य्य सिंह के मुख पर कोई मलिनता न थी; पूछने पर उसी सरल परन्तु वीरता-पूर्ण-वाणी से उत्तर दिया—"वही दुष्ट, जो शुद्ध होने आया था, मार गया तो फिर बोले—'डाक्टर को बुलाओ, शीघ्र बुलाओ।' चारों ओर समाचार फैल गया, डाक्टर तथा डाक्टरी के विद्यार्थी जमा हो गये। चारपाई पर धर्म-वीर को लिटा कर हस्पताल की ओर ले चले। मैं उस दिन अकस्मात् ४ बजे शाम की गाड़ी से लाहौर पहुँचा था, समाचार पाते ही धर्म वीर के निवास-स्थान की ओर चल दिया। आगे गली के मुहाने पर 'शहीद सवारी" आती हुई मिली और मैं कलेजा थाम साथ हो लिया।

हस्पताल पहुंचते ही आर्य्य-वीर को मेज पर लिटाया गया। दुःखित मन को संभाल कर मैं आगे बढ़ा। उस समय अन्तड़ियाँ हाउस-सर्जन के हाथ में थीं। मुझे देखते ही दोनों हाथ, जो सिर के नीचे थे, उठा लिये और हाथ जोड़े। मेरी अश्रुधारा निकलने को ही थी कि प्यारे लेखराम ने अपनी साधारण वीर-वाणी से कहा—"नमस्ते लाला जी, आप भी आ गये। इस साधारण दृश्य

ने मेरा दिल दहला दिया। अन्तड़ियों की ओर देख कर विश्वसा नहीं आता था कि मैं अपने प्यारे मित्र लेखराम से बात कर रहा हूँ। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों शिमले के वार्षिकोत्सव से लौट कर मुझे नमस्ते कर रहे हैं फिर बोले—"लाला जी बेअदबियां माफ़ करना" मैंने बलपूर्वक रोने-धोने को रोक कर कहा—"पण्डित जी! आप तो परमात्मा पर पक्का विश्वास रखने वाले हैं, प्रत्येक सङ्कट में उसी का आश्रय ढूंढ़ा करते हैं, उसका ध्यान कीजिये। वह वीर-वाणी उत्तर देती है—"अच्छा तो शायद मैं अच्छा हो जाऊँगा, परन्तु लाला जी! मेरे अपराध क्षमा करना।" यह कहा और वेद-मन्त्र का पाठ करने लगे।

"ओ३म्। विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव।"

मरते दम तक इस मन्त्र तथा गायत्री मन्त्र का जप करते रहे। बीच-बीच में "परमेश्वर तुम महान् हो, परम पिता इत्यादि" शब्द बोलते रहे।

छुरी लगने से पौने दो घण्टों के पश्चात् डाक्टर पेरी साहेब आये। फिर बराबर दो घण्टों तक डाक्टर महोदय की कटी हुई आँतों को सीते रहे। एक स्थान की आंत कट कर दो टुकड़े हो गई थी, आठ बड़े-बड़े घाव और बहुत से छोटे-छोटे घाव भी थे। डाक्टर पेरी हैरान थे कि दो घण्टों तक जिसके अन्दर से रक्त खुला बहता रहा हो वह कैसे जीवित रह सकता है। इसलिए उन्होंने कहा कि साधारण अवस्था में तो ऐसे घाव लगने पर कोई मनुष्य बच नहीं सकता, परन्तु जिसकी अब तक यह चेतना शक्ति है वह शायद बच जावे। यदि यह समझा भी जाय तो Miracle (चमत्कार) ही समझना चाहिये।

१।। बजे रात तक बराबर सचेत थे। केवल परमेश्वर के नाम का जप था; न घर वालों की चिन्ता और न घातक पर अप्रसन्नता और न मौत का डर। यदि चिन्ता थी तो आर्य्य-समाज की ओर यदि ध्यान था तो उस महा-यज्ञ की ओर जो ऋषि दयानन्द रच गये थे। धर्म-वीर ने न तो माता और धर्म-पत्नी की चिन्ता की क्योंकि उनको विश्वास था कि परमेश्वर उनका सहायक है और नहीं घातक का पता लगाने को कहा क्योंकि जिस वैदिक धर्म

के वह सच्चे सेवक थे वह बदला लेने की शिक्षा नहीं देता। अन्तिम आदेश अपने सहधर्मियों को यह दिया कि—

"आर्य्य-समाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिये।"

दो बजे के करीब लेखराम का तौर बदल गया। दो बार जोर से हाथ हिलाये और ५ मिनटों में हाथ सीधे करके सदा की नींद सो गये।

पौ फटते ही धर्मवीर की मौत का समाचार विद्युतवत् सारे लाहौर नगर में फैल गया। क्या हिन्दू, क्या जैनी क्या ब्राह्म, क्या सिक्ख सब दुःखी प्रतीत होते थे। अपने प्यारे से प्यारे बच्चे की मौत पर इतना कष्ट न हुआ होगा जो इस समय आर्य्य-सन्तान मात्र को लेखराम का बध का समाचार सुन कर हुआ। सब ने छोटे-छोटे विरोधों को भुला दिया। दस बजे के अनुमान धर्मवीर के मृतक शरीर वाले कमरे के सामने का मैदान आर्य्य सन्तान से भर गया। वे लोग, जिन्होंने आर्य मन्दिर में कभी पैर भी नहीं रखा था, इस जन-समूह में दिखलाई देने लगे। सिविल-सर्जन ने बड़ी सहानुभूति की दृष्टि से किसी मुसलमान को मृतक शरीर के पास फ़टकने न दिया और दस मिनट में दो घण्टों का काम करके लेखक का जो कुछ बचा था हम लोगों के हवाले करके चल दिये।

अन्दर जा कर तो देखा तो आर्य-पथिक को सदा का यात्री पाया, परन्तु फिर भी स्थिर बिछोड़े का निश्चय न हुआ। आँख मुंदी हुई परन्तु मुख में कोई परिवर्तन नहीं; मानो लेटे हुए सन्ध्या कर रहे हैं। वही हृष्ट-पुष्ट शरीर, वही विशाल छाती कुछ भी भेद न था। अश्रुधारा बहाते हुए सब भाइयों ने प्रेम पूर्वक वस्त्र पहनाये। बाहर अर्थी लाते ही सारा शरीर श्वेत पुष्पावली से ढांपा गया। कैमरा (Camera) तय्यार था, मुंह खोल कर अन्तिम चित्र लिया गया। इस समय दो सहस्र पुरुष अन्तिम दर्शन के लिये खड़े थे।

अर्थी उठाई गई और शहीद की सवारी सीधी अनारकली में पहुँची। थोड़ी ही देर में ‚० सहस्र का मांता साथ था। यहाँ तांता भी आ पहुँची जिसका बिलाप सुन कर २० सहस्र आंखों से नदियाँ बहने लगीं। एक युवक अचेत हो कर गिर पड़ा।

अर्थी ने शहर में प्रवेश किया। प्रत्येक स्थान में आर्य्य-जाति की देवियों के नीचे छतें फटी पड़ती थीं। प्रत्येक देवी को ऐसा दुःख था जैसा उनका कोई प्यारा बच्चा सदा के लिए जुदा हो गया हो। वे लोग जो कभी अपनी दूकान से हिल कर किसी सभा या सुसाइटी में नहीं नहीं गये, गुलाब जल के कन्टर अर्थी पर बहा रहे थे। किसी-किसी स्थान पर तीस-तीस हज़ार की भीड़ हो जाती थी। फ़ूल बेचने वालों ने मुंह मांगे दाम लिए, भूमि पुष्प वर्षा से रंगी पड़ी थी। अन्त को सवारी नगर से बाहर निकली और वेद मन्त्रों का उच्चारण करते तथा वैराग्य के भजन गाते सात सहस्त्र से अधिक भाई श्मशान भूमि तक पहुँचे। ज्ञान होता था कि चिरकाल से सोई हुई आर्य जाति जाग उठी है और धर्म पर सर्वस्व न्यौछावर करने वालों का सत्कार करना सीखने लगी है।

श्मशान में अर्थी को रक्खा गया और फिर अन्तिम दर्शन की अभिलाषा हुई। पढ़े लिखे और अनपढ़, राव और रङ्क सब ने दर्शन किये। एक भक्ति-रस से भरा भजन गाया गया और उपस्थित सज्जनों की शान्ति के लिये ईश्वर प्रार्थना हुई। मृतक शरीर का वेद मन्त्रों की आहुतियों से दाह किया गया और जब वह बहुमूल्य शरीर केवल एक भस्म ढेरी रह गया तो सब भाई घरों को लौटे।

उस समय आर्य्य-धर्म रूपी देवी का आर्तनाद स्पष्ट सुनाई देता था—

"हा ! वीर लेखराम, पुत्र ! क्या तुम सदा के लिये मेरा सेवा से जुदे होते हो ?"

इस प्रश्न का उत्तर मेरे अन्दर से निकला। मैंने श्रद्धापूर्वक मन ही मन में उत्तर दिया—"देवी ! धर्म-वीर के रक्त के एक-एक बिन्दु से एक-एक वीर उत्पन्न होगा और वे सब तुम्हारी सेवा करेंगे।" और सचमुच उन रक्त बिन्दुओं ने वीर प्रचारक उत्पन्न किये और सोमनाथ, बजीर चन्द्र, मथुरादास, तुलसीराम, योगेन्द्रपाल, जगतसिंहादि ने ओ३म् का झण्डा उठाये हुए प्राण दिये और अन्य भी बीसियों वीर काम कर रहे हैं, परन्तु आज पौने अठारह वर्षों के पश्चात् भी देवी का वही आर्तविलाप सुनाई देता है—

"हा, पुत्र लेखराम ! वीर ! क्या सदा की यात्रा में ही चले गये ? फिर दर्शन न दोगे ?"

क्या देवी की पवित्र पुकार बहरे कानों पर ही पड़ती रहेगी और ब्राह्मण धर्म का पालन एक स्वप्न ही बना रहेगा !

समाप्त ।

39

THE END OF OUR STORY

When the second World War ended there was a general election. It resulted in great political changes. For about two hundred years Britain had been ruled by Governments formed by one of two political parties, that is to say the parties we now describe as Conservative and Liberal From time to time, particularly in years of crisis, coalition governments had been formed. There had been a coalition for a time during the first World War, and also during the Economic Crisis of 1931.

During the first quarter of the present century a new party, the Socialist or Labour Party, was arising in Britain, and had sufficient representation in the House of Commons in 1914 to secure representation in Lloyd George's coalition government. Soon it was strong enough to take office, governing with help from the Liberal Party, as Labour had not a majority of its own. Do not forget the early Labour members of Parliament—Keir Hardy; Arthur Henderson, the first Labour Foreign Minister; Phillip Snowden, the first Labour Chancellor of the Exchequer, and Ramsay MacDonald, Prime Minister in the first two Labour Governments. The value of organized labour in Britain's political system was shown during the second World War. When grave danger threatened our islands after the withdrawal of France from the war in 1940, the leaders of the Labour Party joined Winston Churchill's government, and

assured him of the loyal support of the great trade unions. Thus a united country faced Nazi Germany.

When the coalition government led by Winston Churchill broke up at the end of the war, party politics were resumed. In the general election which followed in 1945 the Labour Party won a great victory. Clement Attlee became Prime Minister in the first Socialist Government in Britain which had ever had a majority over all the opposing parties, and thus was able to get its Bills through Parliament without the necessity for compromise on important principles with the Opposition.

We are nearing the end of the third book of *Living with History*. In the three books there have been altogether 109 chapters. At the beginning of each chapter there has been a small drawing suggesting what the chapter was about.

On the next page you will find nine portraits which have been used in these chapter headings. They are not arranged in any special order. Can you write down the order in which this portrait gallery should be arranged if the earliest person appeared first and the other eight in time order down to the most recent?

Which of the portraits can you name? Write down the most important thing you know about each man or woman. Then check your answer by finding the drawing in one of the three books.

On page 156 you will find similarly nine drawings of things. Identify each of these objects in the same way, write down why each is important and arrange them in time order.
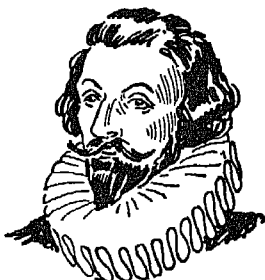
1
2
3
4
5
6
7
8
9

THE LESSON OF HISTORY

LET us remember what *Living with History* has told us. The First Briton took fish from the river at the end of his garden and was what we should call "self-supporting." Later men found they could live more comfortably in a group of families. One family was no longer "self-supporting" The women of the tribe cooked the meat which the men got while hunting. For many, many years a tribe or a village in England was "self-supporting" until, towards the end of the Middle Ages, the towns and villages of Britain discovered the advantages of trade and commerce. But to-day not even the British Commonwealth of Nations is self-supporting

To-day, all of us who live in the British Isles can get food, clothing and all the necessities and comforts of modern life freely from all parts of the world and thus live happier and fuller lives. Of course this means giving as well as taking, selling as well as buying, exporting as well as importing, working as well as eating and enjoying ourselves The welfare of each nation is the welfare of all mankind. The fate of the world depends to-day on whether the United Nations can remain united to win the victories of peace as surely as they won the victories of war. Remember that you are a member of the United Nations, and bear responsibility for keeping peace in the world. It is a harder task to make peace than to make war. To keep enduring peace means hard work by all men of goodwill, it demands knowledge of other peoples as well as of your own. All your life you will be "living with history" if you are wide enough awake to know it.

1
2
3
4
5
6
7
8
9